बारहठ ईसरदास

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप मे राजा शुद्धोधन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे है। उनके नीचे बैठा है मुशी जो व्याख्या का दस्तावेज लिख रहा है। भारत मे लेखन-कला का यह सभवत. सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०

सौजन्य राष्ट्रीय सग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

बारहठ ईसरदास

लेखक
हीरालाल माहेश्वरी

साहित्य अकादेमी

Barhath Isardas : A monograph by Hiralal Maheswari on the Rajasthani author. Sahitya Akademi, New Delhi (1997), Rs. 25.

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1985
पुनर्मुद्रण : 1997

साहित्य अकादेमी

मुख्य कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35 फीरोजशाह रोड, नयी दिल्ली 110 001

बिक्री केन्द्र
स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

प्रादेशिक कार्यालय
जीवन तारा बिल्डिंग, चौथी मंजिल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर मार्ग, कलकत्ता 700 053
172, मुम्बई मराठी ग्रंथ सग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014
गुना बिल्डिंग, दूसरी मजिल, 304-305, अन्ना सलाई, तेनामपेट
चेन्नई 600 018
एडीए रगमन्दिर, 109, जे. सी. मार्ग, बैंगलोर 560 002

ISBN 81-260-0196-4

मूल्य : पच्चीस रुपये

मुद्रक : डायमड आर्ट प्रिन्टर्स दिल्ली - 53

आभार

यह पुस्तक बारहठ ईसरदास की रचनाओं की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर लिखी गई है, जिनका उल्लेख यथास्थान किया गया है। इन प्रतियों को अध्ययन हेतु उपलब्ध करवाने, फ़ोटो/फ़ोटोस्टेट की सुविधा देने आदि के लिए मैं निम्नलिखित संस्थाओं, उनके कार्यकर्ताओं और पदाधिकारियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ :—

1. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर; डॉ० ब्रजमोहन जावलिया
2. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर; श्री ओंकारलाल मेनारिया
3. सिटी पैलेस, पोथीखाना (खास मोहर संग्रह), जयपुर; श्री गोपाल नारायण बहुरा
4. राजस्थान भाषा प्रचार सभा, डी-282, मीराँ मार्ग, बनी पार्क, जयपुर; श्री रावत सारस्वत
5. सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, 186, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता; श्री जुगलकिशोर जैथलिया
6. श्री सीताराम लालस, 241-ए, शास्त्रीनगर, जोधपुर
7. श्री राधाकृष्ण नेवटिया, 52, जकरिया स्ट्रीट, कलकत्ता, तथा
8. श्री रतुभाई गढवी (रोहड़िया), सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट (बारहठ ईसरदास विषयक सूचनाएँ देने के लिए)।

—हीरालाल माहेश्वरी

विषय-सूची

1

जीवन-चरित

1

चारण जाति में उत्पन्न बारहठ ईसरदास विक्रम की सत्रहवी शताब्दी के एक श्रेष्ठ कवि और परम भक्त थे। उनका काल विक्रम सवत् 1595 से 1675 है। उनके जीवनकाल में ही उनकी प्रसिद्धि राजस्थान, गुजरात-सौराष्ट्र तथा इनके आसपास के क्षेत्रों में फैल गई थी और जो कालान्तर मे बढ़ती ही गई। उनकी निश्छल, अगाध भक्ति तथा भक्तिपरक रचनाओं के कारण उनका लोक-प्रचलित विरुद 'ईसरा-परमेसरा' या 'ईसरा सो परमेसरा' (ईसरदास परमेश्वर का स्वरूप है) हो गया था। लोक ने इतना गौरवपूर्ण विरुद आज तक किसी भक्त कवि को प्रदान नहीं किया।

2

चारणों की 120 शाखाएँ मानी जाती है, जो मुख्यत: तीन कारणों से प्रसिद्धि में आईं: (1) विशिष्ट या प्रसिद्ध कार्य करने के कारण, (2) पूर्वज या पिता के नाम से और (3) निवास-स्थान के नाम से। चारणों की दैवी उत्पत्ति और कार्यों के उल्लेख वाल्मीकि रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत पुराण आदि अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं। इनके अतिरिक्त इनके ऐसे ही उल्लेख। स्कन्द, विष्णु, वायु, वामन, मत्स्य, ब्रह्म, शिव, पद्म आदि पुराणों में प्राप्त हैं इनमें चारणों का उल्लेख स्वतंत्र रूप से तथा अलौकिक शक्ति-सम्पन्न मानवेतर प्राणियों— सिद्ध, गन्धर्व, देवता, पितर, विद्याधर, आदि में एकाधिक या सभी के साथ हुआ है। पद्मपुराण (पातालखण्ड, 8) के अनुसार चारण गंधर्व श्रेणी मे परिगणित देवताओं के स्तुति पाठक हैं—चारणा: स्तुतिपाठका:। देवताओं की कीर्ति-प्रचार करने से इनका नाम चारण प्रसिद्ध हुआ—चारयन्ति कीर्तिमिति चारणा:। अलौकिक सन्दर्भों में कहे गए इन कथनों से चारणों की ऐतिहासिकता पर प्रकाश नहीं पड़ता।

3

किवदंती है कि सिद्धराज जयसिंहदेव सोलंकी (संवत् 1150-1199) ने महावदान्य नामक चारण को आनर्त (काठियावाड़) देश का राज्य दान में दिया, तब से वहाँ चारणों का बसना आरम्भ हुआ। परन्तु जब वह राज्य चारणों के हाथ से जाता रहा, तो उनके दो दल हो गए। इनमें से एक दल के चारण तो वहीं रहे और वे कच्छ देश के नाम से काछेला प्रसिद्ध हुए। दूसरा दल मरुप्रदेश में चला आया; इसके लोग मारू चारण कहलाने लगे। कालान्तर में आचार-व्यवहार में भिन्नता के कारण काछेला और मारू चारणों का परस्पर विशेष सम्बन्ध नहीं रहा। इन मारू चारणों की 120 शाखाएँ प्रसिद्ध हैं किन्तु सभी का विवरण नहीं मिलता। सोदा बारहठ कृष्णसिंहजी ने इनमें से 113 शाखाओं का नामोल्लेख किया है, जिनमें नष्ट हुई 47 शाखाएँ भी सम्मिलित हैं (वंशभास्कर, तृतीय जिल्द, मध्यपीठिका, पृष्ठ 86-92)। चारण जाति के मूलस्थान, उसके फैलाव आदि के विषय में प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री का अभाव है।

4

प्राचीनकाल से ही चारण और राजपूत का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ रहा है। वे आपस में भाई-भाई माने जाते है। युद्ध में चारण राजपूतों के साथ रहकर उनका उत्साहवर्द्धन करता था। यही नहीं, वह स्वयं भी हथियार लेकर युद्ध में उतरता था। इसी कारण यह उक्ति प्रसिद्ध हुई—'चारण मरण परायो चहरै, चारण मरण न पाड़ै चूक' (वंशभास्कर, तृतीय जिल्द, मध्य-पीठिका, पृष्ठ 61) (जो राजपूत युद्ध से विमुख होता है, चारण उसकी निन्दा करता है और वह स्वयं युद्ध में मृत्यु को गले लगाने में हिचक नहीं करता)। राजपूत राजा उनसे अपनी घरेलू और राजनैतिक मन्त्रणाएँ करते और सहायता लेते थे। आपत्ति-काल में चारण अपने स्त्री-पुत्रों को राजपूतों के घरों में रखते और राजपूत उनको अपनी माता-बहन और पुत्र समझकर उनकी रक्षा करते थे। राजपूत भी आपत्ति के समय अपने स्त्री-पुत्रों को चारणों की रक्षा में रखते थे और चारण अपना कर्तव्य भली-भाँति निबाहते थे। परस्पर विश्वास, सम्बन्धों की पवित्रता और धर्म-पालन अखण्ड रूप से दोनों जातियों में बराबर रहे है। जोधपुर के महाराजा मानसिंह (संवत् 1839-1900) का इस विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है :

चारण क्षत्री भाइयां, जां घर खाग तियाग।
खाग तियागां बाहिरा, तासूं लाग न भाग॥

(चारण उन राजपूतों का भाई है, जो समय पड़ने पर खड्ग उठाते और 'त्याग' देते है। जो खड्ग और 'त्याग' रहित है, उनसे चारण का कोई लेना-देना नही है)। विवाह के अवसर पर दिया जाने वाला दान 'त्याग' कहलाता है।

महाभारत में उल्लेख है कि राजा पाण्डु के देहान्त के पश्चात् चारण और ऋषि उनके पाँचों पुत्रों और कुन्ती को हस्तिनापुर लाए थे (आदिपर्व, अध्याय 126, श्लोक-35)। इन चारणों की गणना दैवी चारणों में हो सकती है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है जिनसे राजपूतो और चारणों के परस्पर गहरे सम्बन्धो का पता लगता है। मारवाड़ के राव चूण्डा और उसकी माता मांगलियाणी को काळाऊ ग्राम के चारण आल्हा ने अपनी शरण में रखा था। चूण्डा को राजपद तक पहुँचाने में उसका भी हाथ था। खिड़िया चारण चानण ने राठौड़ राव रणमल्ल की बहन हंसाबाई का विवाह चित्तौड़ के राणा लाखा के साथ सम्पन्न करवाया था। संवत् 1595 में चित्तौड़ में राव रणमल्ल के छलाघात से मारे जाने के बाद उनके शव का दाह-सस्कार भी चानण ने किया था तथा उनकी अस्थियाँ ले जाकर गंगाजल में प्रवाहित की थीं।

5

चारण जाति मे ज्यों-ज्यो कमी आती गई, त्यों-त्यों उन्होंने राजपूतों के लडकों को अपनाकर अपनी कुलरक्षा की। बारहठ ईसरदास के पूर्वज, भाटी राजपूत से चारण बनाए गए थे। राजपूतों के आश्रय मे रहकर और राजपूत को केन्द्र-बिन्दु बनाकर चारण ने जितना लिखा उतना और किसी ने नहीं। चारणों मे अनेक भक्त कवि हुए हैं, पर उन्होंने भी, चाहे थोड़ी मात्रा में ही सही—राजपूत पर—उसकी वीरता, वदान्यता, गुण, विशेषता, सम्बन्धित घटना-विशेष, मृत्यु आदि पर कुछ न कुछ अवश्य ही लिखा है। इसके अपवाद न भक्त शिरोमणि बारहठ ईसरदास है और न ही उनसे किंचित् पूर्व हुए सुप्रसिद्ध भक्त कविया अल्लूजी या कोई और। इसीसे राजपूत और चारण का परम्परागत घनिष्ठ सम्बन्ध अनुमित किया जा सकता है। फिर, मध्ययुग में चारण राजपूतों के याचक रहे थे। इस कारण राजपूत भी अपना कर्त्तव्य समझकर और विशेष प्रीतिपूर्वक उनको दान देते और अनेक प्रकार से सम्मानित करते थे। राजपूत नरेशों और ठाकुरों द्वारा उनको जागीर तथा 'लाखपसाव'; 'कोड़ पसाव' आदि देने के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

चारण को दान में दी गई भूमि 'उदक' या 'सांसण' (शांसण) कहलाती है। 'उदक' शब्द 'उदक दत्त' अथवा 'उदक दान' शब्दों का संक्षिप्त रूप है। दानी अपने हाथ मे कुश के साथ जल लेकर याचक को यह कहकर दान देता

है : तुभ्यमहं संप्रददे इदं न मम (तुम्हारे अर्थ मैं इसको दान देता हूँ, यह अब मेरा नहीं है)। 'उदक' के साथ 'आघाट' अर्थात् सीमा शब्द भी मिलता है जिसका अर्थ है—सीमा सहित उदक दान दिया गया है। तीसरा शब्द 'सासण' या 'शांसण' है जो 'शासन' का रूपान्तर है, अर्थ है—आज्ञा। तात्पर्य यह है कि इसकी सदैव के लिए आज्ञा है तथा आज्ञा चलाने का तुमको अधिकार है। 'उदक' या 'सांसण' की भूमि माफी की भूमि होती है, जिसकी परम्परा रही है। इस विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है: 'उदक उथापै ताहि उदक लागै नही' ('उदक' (माफी) का उत्थापन करने वाला नरक में जाता है, उसके वंशजों के हाथ की जलांजलि उसको नही मिलती)। राजस्थान तथा गुजरात-सौराष्ट्र में राजपूतों द्वारा चारणों को दी गई 'उदक' या 'सांसण' की अनेक छोटी-मोटी जागीरें और भूखण्ड रहे हैं। मध्ययुग में चारण की एक अन्य वृत्ति 'पोळपात'पने की भी रही है। 'पोळपात' का मतलब है—द्वार पर नेग लेने वाला पात्र। यह विवाह के अवसर पर लिया जाता है। सामान्यत: सभी राजपूतों के चारण 'पोळपात' होते थे किन्तु इस सम्बन्ध में परम्परा से राजपूतों की तीन जातियों के साथ चारणों की तीन शाखाओं का विशेष सम्बन्ध रहा है—सीसोदियों के सोदा चारणों का, राठौड़ों के रोहड़िया चारणों का और देवड़ों के दुरसावत (आढो दुरसो के वंशज) चारणो का :

सोदा नै सीसोदिया, रोहड़ नै राठौड़।
दुरसावत नै देवड़ा, ठावा ठावी ठौड़॥

सामान्यत: चारण को 'बारहठ' नाम से सम्बोधित किया जाता है। बारहठ-द्वारहठ ; द्वार पर हठ करके तोरण के हाथी आदि नेग लेने के कारण यह सज्ञा हुई। जैसे चारण राजपूतो के याचक रहे, वैसे ही इन सात जातियों के लोग चारणों के याचक रहे : 1. कुलगुरु, 2. पुरोहित (गूजरगौड़, दाहिमा, औदीच्य, सनाढ्य ब्राह्मण), 3. रावल, 4.गोइंदपोता (ढोली), 5. बीरमपोता, 6. मोतीसर, और 7. राव (भाट, चंडीसा जाति के भाट)। चारण शक्ति और विष्णु के उपासक हैं, दूसरे शब्दों में इनको स्मार्त मतावलम्बी कहा जा सकता है। बारहठ ईसरदास इसी चारण जाति के रत्न थे।

6

बारहठ ईसरदास रोहड़िया शाखा के चारण थे। विक्रम तेरहवीं शताब्दी में राठौड़ राव सीहा ने मारवाड़ के पाली नगर पर अधिकार कर खेड़ में अपना राज्य स्थापित किया। इससे आसपास के चौहान, पंवार, सोलंकी

और भाटी राजपूतों से उनका मनमुटाव हो गया। प्रसिद्ध है कि एक दिन राव सीहा के पुत्र धूहड़ को सोलंकियों ने ताना दिया कि तुमने विश्वासघात करके कई सौ ब्राह्मणों का वध किया इसलिए कोई चारण तुम्हारा 'पोळपात' नही है। यदि तुम असली राजपूत होते, तो कोई चारण तुम्हारा 'पोळपात' अवश्य होता। यह बात धूहड़ को चुभ गई। उसने अपने पुत्र रायपाल के द्वारा जैसलमेर के चन्द नामक एक भाटी राजपूत को खेड़ बुलवाया। रायपाल ने उसको 'रोड' (रोहड़) कर (बलपूर्वक रोककर या बन्द कर) अपना 'पोळपात' बनाया और धूहेडा (धूगेड़ा) सहित 12 गाँव जागीर मे तथा 'बारहठ' उपटक दिया। 'रोहड़' कर चारण बना लिए जाने के कारण चन्द भाटी और उसकी संतति 'रोहड़िया' चारण कहलाई (किशोरसिंह बार्हस्पत्य, **हरिरस**, पृष्ठ 4)।

चन्द का विवाह मीसण शाखा के चारण आसायच की पुत्री के साथ हुआ। उसके 12 पुत्रों मे से एक — पुण्यसी के पुत्र भाद्रेस ने बाड़मेर के पास अपने नाम से 'भाद्रेस' (भादरेस) नामक गाँव बसाया। पुण्यसी की चौथी पीढ़ी में बारहठ गोंधाजी हुए। उनके तीन पुत्र थे—हरसूर, सूजो और आसानन्द। हरसूर के शिवराज और सूजो के ईसरदास नामक पुत्र हुए। सूजो (सूजा) का दूसरा नाम सूरो (सूरा) है। इनमें हरसूर और आसानन्द (आसोजी) प्रसिद्ध कवि भी थे। चन्द की विभिन्न वशावलियों में किंचित् अन्तर भी मिलता है।

7

ईसरदास का जन्म भाद्रेस गाँव में अमराबाई की कोख से संवत् 1595 के चैत सुदि 9 को हुआ। बचपन मे ही उनके माता-पिता का देहावसान हो गया। तब उनका पालन-पोषण उनके चाचा आसोजी ने किया। उन्होंने ही उनको विद्याभ्यास कराया और काव्य-शिक्षा दी। ईसरदास के जन्मकाल के विषय मे प्रचलित दोहे का शुद्ध रूप यह है :

पनरासौ पिच्चाणवै, जनम्या ईसरदास।
चारण वरण चकार में, उण दिन हुवौ उजास।

उनकी जन्मकुण्डली (किशोरसिंह बार्हस्पत्य द्वारा सम्पादित **हरिरस**, कलकत्ता) और उनसे सम्बन्धित अनेक समसामयिक व्यक्तियों, घटनाओं तथा उनके चाचा आसोजी के जीवनकाल आदि के आधार पर उनके जन्मकाल का यही संवत् प्रमाणित सिद्ध होता है, किन्तु कतिपय विद्वान् उनका जन्मकाल संवत् 1515 के श्रावण सुदि 2 को तथा स्वर्गवास संवत् 1622 के चैत सुदि 9 को मानते हैं और प्रमाणस्वरूप इन दोहों का हवाला देते है :

संवत पन्नर पनर .में जनमे ईशरचन्द । =1515
चारण वरण चकोर में उण दिन हुवो आनन्द ।।

× × ×

सर५ भुव१ सर५ शशि१ बीज भृगु, श्रावण सित पख सार । =1515
समय प्रात सूरा घरे, ईशर भो अवतार ।।

प्रथमत: तो इन दोहों की प्रामाणिकता ही सदिग्ध है। फिर, इस सम्बन्ध मे कतिपय अन्य सर्वमान्य बातो को भी ध्यान में रखना आवश्यक है :

1. कि हरसूर, सूजो (सूरो) और आसोजी भाई-भाई थे,
2. कि सूजोजी की अधेड़ अवस्था मे ईसरदास जन्मे थे,
3. कि ईसरदास की बाल्यावस्था में उनके माँ-बाप का देहान्त हो जाने पर उनके चाचा बारहठ आसोजी ने उनका पालन-पोषण किया तथा पढ़ाया-लिखाया था,
4. कि ईसरदास की प्रथम पत्नी से उनके दो पुत्र थे,
5. कि ईसरदास की प्रथम पत्नी देवलबाई के देहान्त के पश्चात् आसोजी उनको द्वारका-यात्रार्थ अपने साथ ले गए थे,
6. कि इस यात्रा के समय दोनों नवानगर (जामनगर) के रावळ जाम के दरबार मे गए थे ; ईसरदास तो वहीं रावळ जाम के पास रह गए और बारहठ आसोजी लौट आए,
7. कि रावळ जाम ने वहाँ ईसरदास का दूसरा विवाह राजबाई से करवाया जिससे उनके तीन पुत्र और एक पुत्री हुई,
8. कि रावळ जाम के दरबारी पडित पीताम्बर भट्ट से उन्होंने संस्कृत के आर्ष ग्रन्थों, विशेषत: भागवत का अध्ययन किया था।

अब इन बातों के सन्दर्भ मे विचार किया जाए।

8

बारहठ हरसूर

परम्परा से बारहठ हरसूर गीतो (डिंगल गीतों) के विशिष्ट कवि और बारहठ ईसरदास सम्पूर्ण विद्याओं के ज्ञाता के रूप मे माने जाते रहे हैं .

'कवित' अलू, 'दूहे' करमाणंद, पात ईसर 'विद्या चौ पूर'।
'छन्दे' मेहो, 'झूलणे' मालो, सूर 'पदे', 'गीते' हरसूर ।।

(—वरदा, अप्रेल, 1966, पृष्ठ 4)

विभिन्न हस्तलिखित प्रतियो मे 'हरसूर रोहड़ीया', 'बारहठ हरसूर' और हरसूर' के नाम मे लगभग 40-45 डिंगल गीत मिलते हैं, जिनमें कई प्रकाशित

भी हैं (नरोत्तमदास स्वामी—राजस्थानी वीर-गीत; राजस्थान-भारती के महाराणा कुम्भा विशेषांक आदि में)। 'हरसूर रोहड़ीया' का राव वीरमदेव पर गीत प्राप्त है :

> वाटाउवा कहौ वीरमाइण, जोषिम दीह तणै जुड़िया ।
> पौरिस वात सहू कोई पूछै, पैला कतरा रणि पड़िया ।।1

(इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह की प्रति, संख्या 176, पृष्ठ 74, लिपि-काल—संवत् 1839)

(हे बटाऊ ! यह बताओ कि वीरम के साथ जो लोग युद्ध कर रहे थे, (युद्ध के दिन जो जोखिम उठा रहे थे) उन शत्रुओं में से (युद्ध में) कितने लोग धाराशायी हुए ? इस पौरुष की बात सभी कोई पूछ रहे हैं।)

इस गीत में जोइयों के साथ युद्ध में घायल होकर गिरे और मृत्यु में कुछ पूर्व वीरम का, जोइये देपाल को आते देखना और उससे बदला लेकर वीरगति प्राप्त करने का उल्लेख है। वीरम की मृत्यु संवत् 1440 में हुई थी (रामकर्ण आसोपा, मारवाड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ 89)। इस समय रचयिता की उम्र कम से कम बीस साल मानी जाए, तो जन्मकाल संवत् 1420 आता है। ऐतिहासिक और वीररसात्मक डिंगल गीत सम्बन्धित व्यक्तियों और घटनाओं की समसामयिक रचनाएँ मानी जाती है। 'हरसूर' के कूंपा महिराजोत और उसके पुत्र प्रतापसिंह कूंपावत पर भी गीत मिलते है (प्रति संख्या 176, पृष्ठ 108, 176 आदि)। ये दोनों वीर जोधपुर के राव मालदेव की ओर से बादशाह शेरशाह के साथ संवत् 1600 में युद्ध कर काम आए थे। यह 'हरसूर' के अद्यावधि प्राप्त गीतों की ऊपरी सीमा है। इस प्रकार यदि तीनो हरसूरों को एक माना जाय, तो उसका जीवनकाल संवत् 1415-20 से 1600 तक व्याप्त है। स्पष्ट ही 'हरसूर' नाम के तीन नहीं, तो दो व्यक्ति अवश्य हुए हैं। ऐसी स्थिति मे ईसरदास के बड़े पिता— हरसूर के सभी गीतों का निश्चित रूप से पता लगाना सम्भव नहीं है; और इस आधार पर ईसरदास के काल का अनुमान लगाना अनुचित है।

9

बारहठ आसोजी

बारहठ आसोजी का समय अनुमानतः संवत् 1550 से 1650 या इससे किंचित् पूर्व कभी है (डॉ. माहेश्वरी, हिस्ट्री ऑफ़ राजस्थानी लिटरेचर)। इनकी ये रचनाएँ प्राप्त है :

1. रावळ माला रो गुण, 2. गोगाजी री पेड़ी, 3. राउ चन्द्रसेण रा रूपक, 4. उमादे भटियाणी रा कवित्त, 5. बाघजी रा दूहा, 6. रावळ जाम रा

दूहा, 7. गुण निरंजण प्राण (पुराण) तथा 8. डिंगल गीत—राव कल्याणमल, यादव गाहड़ हमीरोत, रावळ जाम आदि पर तथा भक्तिपरक गीत आदि।

आसोजी बहुत अच्छे विद्वान्, भक्तिभाव वाले प्रसिद्ध कवि और मान्य व्यक्ति थे। उन्होने अपनी रचनाओं द्वारा चारण शैली की ऐतिहासिक-वीररसात्मक और पौराणिक-धार्मिक—दोनों धाराओं मे उल्लेख्य योगदान किया। वे जोधपुर-नरेश राव मालदेव के विशेष कृपापात्र थे। मालदेव संवत् 1588 में जोधपुर की गद्दी पर बैठे। उनका एक विवाह जैसलमेर के रावळ लूणकरण की पुत्री उमादे से संवत् 1593 के वैसाख बदि 4 को हुआ था। इतिहास में उमादे (उमा देवी) 'रूठी राणी' के नाम से प्रसिद्ध है। उसके पीहर मे भारमली नाम की एक सुन्दर दासी थी। विवाह की रात्रि को अन्तःपुर मे उसके साथ राव मालदेव को कामासक्त देखकर वह रूठ गई थी। रावजी के अनेक प्रयत्न करने पर भी उसने अपना मान नही छोड़ा। तब रावजी ने बारहठ आसोजी को उसको मनाकर जोधपुर लाने के लिए जैसलमेर भेजा। यह संवत् 1595 के आसपास की बात है। आसोजी के समझाने पर वह जोधपुर के निकट कोसाणा गाँव तक आ भी गई। किन्तु उसके बार-बार यह पूछने पर कि रावजी मेरे साथ कैसा व्यवहार करेंगे, आसोजी ने स्पष्ट ही कहा :

मांण रखै तो पीव तज, पीव रखै तज मांण।
दो दो गयंद न बंधही, हेकण खंभू ठांण॥

(यदि मान रखना है, तो पीव को छोड़ो और यदि पीव को रखना है, तो मान छोड़ो। एक ही 'ठाण' पर एक ही खूंटे से दो-दो हाथी नहीं बाँधे जा सकते)।

यह सुनकर उसका मान पुनः जाग उठा और वह वापस जैसलमेर चली गई। आसोजी ने कहा—यदि तू अपनी इसी बात पर दृढ़ रही, तो मैं तुम्हे अमर कर दूंगा। संवत् 1604 में वह गूंदोज और बाद में वहाँ से केलवा जाकर रहने लगी। अपनी सौत के पुत्र राम को उसने अपना दत्तक पुत्र मान लिया था। संवत् 1619 में राव मालदेव के निधन की सूचना मिलने पर वह उनकी पगड़ी के साथ सती हुई। उस समय आसोजी ने 14 कवित्त (छप्पय) कहे जो 'उमादे भटियाणी रा कवित्त' नाम से अत्यन्त विख्यात है। इस प्रकार, आसोजी ने अपने कथन को सत्य सिद्ध किया। कवित्तों का रचनाकाल संवत् 1619-20 है (द्रष्टव्य: रेउ, मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ 20-21, पाद टिप्पणी; राजस्थान-भारती, वर्ष 12 अंक 1, मार्च 1969; डॉ माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, आदि)।

'राउ चन्द्रसेण रा रूपक—कँवर थकैनूं, आसै बारट रा कह्या' का रचनाकाल संवत् 1618-19 या इससे किंचित् पूर्व है, जब चन्द्रसेन 'कुँवर' थे

'रावळ माला रो गुण' रावळ मल्लीनाथ के इतिवृत्त से आरम्भ कर उसके आठवें वंशज—मेघराज की वीरता पर लिखी गई रचना है। इसमें दी गई वंशावली, नगर गाँव से प्राप्त संवत् 1686 के शिलालेख से भी मिलती है (ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ 192, पाद टिप्पणी)। इससे अनुमान होता है कि आसोजी समय-विशेष में उसके समकालीन थे। इन तथा कई अन्य आधारों पर आसोजी का पूर्वलिखित समय माना गया है।

10

बारहठ ईसरदास

यदि ईसरदास का जन्म संवत् 1515 में माना जाए, तो आसोजी का जन्म संवत् 1480/85 के आसपास मानना होगा। इस हिसाब से वे लगभग 110-115 साल की उम्र में उमादे को लिवा लाने जैसलमेर गए तथा 135-140 साल की उम्र में उन्होंने उमादे विषयक कवित्त और 'राउ चन्द्रसेण रा रूपक' की रचना की। ये बातें विश्वास योग्य नहीं हैं, इसलिए बारहठ आसोजी का जन्म संवत् 1550 के आसपास होना ही मान्य है। श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य ने उनका जन्म संवत् 1563 के आसपास अनुमित किया है (हरिरस, पृष्ठ 3)। अतः ईसरदास का जन्म संवत् 1595 मानना उचित है। आसोजी ने ईसरदास का पालन-पोषण किया, पढ़ाया-लिखाया और काव्य-शिक्षा दी। ईसरदास सूजोजी की अधेड़ावस्था में हुए थे। इस प्रकार, चाचा-भतीजा—दोनों की उम्र में 30-35 साल का अन्तर मानना समुचित है।

रावळ जाम (संवत् 1561-1618) ने काठियावाड़ में नवानगर (जामनगर) संवत् 1596 में बसाया (नैणसी की ख्यात, दूसरा भाग, पृष्ठ 224, ना. प्र. स., काशी)। इस संवत् से नगर का निर्माण-कार्य आरम्भ होकर लगभग दस साल में—संवत् 1606 मे पूर्ण हुआ था। यदि ईसरदास उसी साल—संवत् 1606 में जामनगर पहुँचे हों, तो संवत् 1515 में जन्म-काल मानने पर उस समय उनकी आयु 91 साल की होती है। इतनी आयु के वृद्ध के साथ एक किशोरी का विवाह (यदि उसी वर्ष उनका विवाह करवा दिया गया हो, तो) होना सर्वथा अनुचित है। फिर इस किशोरी—राजबाई से उनके तीन पुत्र—गोपालदासजी, जेसाजी और कहानदासजी (कान्हा) और एक पुत्री हुई। पुत्री का नाम ज्ञात नहीं है किन्तु वह चारणों की मीसण शाखा मे ब्याही गई थी और उसके और इन तीनों पुत्रों के वंशज अद्यावधि विद्यमान है (वरदा, वर्ष 12, अंक 4, अक्टूबर, 1969 में रतुभाई गढवी का लेख, पृष्ठ 25-32)। यदि प्रत्येक पुत्र और पुत्री की उत्पत्ति में अनुमानतः दो वर्ष का अन्तराल माना जाए, तो सब से कनिष्ठ सन्तान के जन्म के समय ईसरदास की उम्र 99-100 वर्ष

की होती है। इस उम्र के पुरुष से सन्तानोत्पत्ति होना अविश्वसनीय है। (बार्हस्पत्य, हरिरस, पृष्ठ 3-4) । ध्यातव्य है कि यह तो कम से कम समयावधि मानकर बात कही गई है।

रावळ जाम का स्वर्गवास नवानगर (जामनगर) की नींव डालने के 22 साल बाद—संवत् 1618 में हुआ था। यदि ईसरदास का रावळ के दरबार में आना सवत् 1616 में और दूसरा विवाह संवत् 1617 में होना मान लिया जाए तो संवत् 1595 मे उनका जन्म होने से, उस समय उनकी उम्र 22 वर्ष की होती है, जो विवाह के अनुकूल होने से ठीक जान पड़ती है। तद्विपरीत संवत् 1515 में जन्म मानने से उस समय उनकी उम्र 102 वर्ष की होती है जो सभी सम्भावनाओं से परे है।

ईसरदास की रचना—हालाँ झालाँ रा कुंडळिया, ध्रोळ के स्वामी हाला जसा और हळवद के स्वामी झाला रायसिंह के बीच संवत् 1620 या 1621 में हुई लड़ाई पर आधारित है। वीर रस की यह ओजस्वी कृति युवा कवि की होनी चाहिए। सवत् 1595 में जन्म मानने मे इस समय उनकी उम्र 25-26 साल की होती है। तद्विपरीत 1515 में जन्म मानने से इस समय वे 105-106 वर्ष के होते हैं। जीवन के अन्तिम दिनों में (यदि इतने वर्षों तक उनका जीवन-काल माना जाए) भगवद्-स्वरूप ईसरदास नर काव्य की रचना करेंगे, यह सम्भव प्रतीत नही होता। पीताम्बर भट्ट के सान्निध्य से उनकी वृत्ति भगवदोन्मुख हो गई थी, जो अवस्था के साथ-साथ प्रगाढ़तर होती चली गई। नर काव्य की रचनाएँ तो उनके आरम्भिक जीवन की है। फिर, अपने जीवन के अन्तिम दिनों में तो वे सौराष्ट्र में नहीं, राजस्थान में रहने लगे थे। इस प्रकार उनका जन्म सवत् 1595 ही प्रमाणित होता है।

ईसरदास का स्वर्गवास लगभग संवत् 1675 में हुआ, जो अनुमानाश्रित है, किन्तु यह ठीक प्रतीत होता है। उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के राजत्व-काल—संवत् 1696 में, उनके 'हरिरस' को लिपिबद्ध किया गया था (प्रति-संख्या 4293 (8) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर और इस संबंध में इसके वरिष्ठ शोध-सहायक, डॉ. ब्रजमोहन जावलिया के दिनांक 4-9-81 और 3-6-82 के पत्र, लेखक के नाम)। इस प्रति में हरिरस के 12 छन्द (संख्या 57 से 68) लिपिबद्ध नहीं हैं। प्रतीत होता है कि जिस हस्तलिखित प्रति से रचना को उतारा गया था, उसमें या तो ये छन्द त्रुटित थे अथवा नितान्त अपाठ्य थे। साथ ही, अनुमान किया जा सकता है कि उस समय ईसरदास वर्तमान नही थे। किन्तु यह मात्र अनुमान ही है। इसको उपर्युक्त स्वर्गवास-काल मानने का संकेत समझा जा सकता है।

11

ईसरदास ने अपने जीवन के आरम्भिक 21-22 साल भाद्रेस (मारवाड़) में अपने चाचा आसोजी के सान्निध्य में व्यतीत किए। प्रथम पत्नी देवलबाई से उनके दो पुत्र—जगोजी और चूंडोजी हुए। शीघ्र ही उनकी पत्नी का देहान्त हो गया, जिससे उनके मन में विरक्ति-सी आ गई। तब आसोजी उनको उस वातावरण से मुक्त करने और देश-भ्रमण हेतु अपने साथ द्वारका-यात्रा पर ले गए। लौटते समय दोनों जामनगर के रावळ जाम की सभा में गए। वहाँ ईसरदास ने स्वरचित डिंगल गीत सुनाकर अपनी काव्य-शक्ति का परिचय दिया। रावळ और उनके राजपण्डित पीताम्बर भट्ट उनकी प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए। भट्टजी ने उनको नर-काव्य न रचकर भगवद्-काव्य रचने की प्रेरणा दी। उनसे ईसरदास ने भागवत-पुराण और धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन किया। गुण-वैराट और एक हरजस[1] में ईसरदास ने पीताम्बर भट्ट को गुरु रूप में बहुत श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। इससे उनकी भगवद्-भक्ति की सुप्त प्रेरणा जाग्रत होने लगी। ईसरदास तो वहीं रह गए किन्तु आसोजी भाद्रेस लौट आए। बीकानेर के राव लूणकरण (मृत्यु-संवत् 1583) के पुत्र कर्मसीजी—जिनके पट्टे में रिणी थी, ने बारहठ आसोजी को उनके एक दोहे[2] पर 'कोड़पसाव' दिया था (दयालदास री ख्यात, पृष्ठ 36; पाउलेट, गजेटियर ऑफ दि बीकानेर स्टेट, पृष्ठ 12) और उसकी पूर्ति हेतु बीकानेर के लूणकरणसर क्षेत्र का नाथूसर नामक गाँव भी दिया। तब आसोजी भाद्रेस से वहीं आकर बस गए। उनकी संतति भी वहीं रहने लगी (—कविराजा भैरवदान, चारणवंशोत्पत्ति-मीमांसा मार्तण्ड, पृष्ठ 7, 30)।

संवत् 1617 में रावळ जाम ने अबसूरा शाखा के चारण पेथाभाई गढवी की पुत्री राजबाई से ईसरदास का विवाह करवाया और संचाणो, रंगपुर, बीरवदरका, गूंढो आदि कई गाँव जागीर में दिए (बार्हस्पत्य, हरिरस, पृष्ठ 28)। रावळ द्वारा उनको 'कोड़पसाव' दिए जाने का उल्लेख मिलता है (नैणसी की ख्यात, भाग 2, पृष्ठ 227, ना. प्र. स., काशी)। इस विषय

---

1. इस छन्द और हरजस को तीसरे अध्याय—'हरिरस' और भक्तिपरक रचनाओं के अन्तर्गत देखें।

2. सोय दूजौ संसार, माटी सूँ घड़ियौ महण।
तौ घड़ियौ किरतार, काया हूंता करमसी॥
(दूसरा सब संसार तो विधाता ने मिट्टी से बनाया है किन्तु उसने हे कर्मसी! तुमको अपनी काया से बनाया है)।

का उनका एक छप्पय भी है ।[1] राजबाई से उनके चार सन्तान हुईं, जिनका उल्लेख किया जा चुका है ।

लगभग 65 वर्ष की उम्र तक गुजरात-काठियावाड़ में रहने के बाद ईसरदास ने अपनी जन्मभूमि को याद किया और अपने जीवन के शेष दिन वहीं बिताने का निश्चय किया। तद्नुसार वे काठियावाड़ से भाद्रेस पहुँचे । कुछ समय वहाँ रहकर उन्होंने लूणी नदी के तट पर एक कुटिया बनाई और मृत्यु-पर्यन्त वहीं भगवद्-भजन करते रहे । लगभग 80 साल की आयु में—संवत् 1675 में उसी कुटिया में उन्होने अपना शरीर छोड़ा ।

एक पहुँचे हुए भक्त और श्रेष्ठ कवि के रूप में उनकी कीर्ति चतुर्दिक् फैली । गुजरात-काठियावाड़ के सभी वर्गों—राजाओं, ठिकानेदारों, सरदारों और लोक मे उनके प्रति बहुत मान-सम्मान और श्रद्धा-भावना थी ।

12

मध्ययुग के अनेक सन्त-भक्तों की भाँति ईसरदास से सम्बन्धित भी अनेक चमत्कारी कथाएँ और किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। लोकमानस ऐसी बातों में न तो ऐतिहासिक संगति ही बैठाता है और न ही सत्यासत्य का निर्णय करने में तर्कबुद्धि से विचार करता है । इनसे इस बात का पता अवश्य चलता है कि ईसरदास की बहुत मान्यता थी, वे परम भक्त थे और उन्होंने आत्म-साक्षात्कार कर लिया था । उनके द्वारा सम्पन्न असम्भव और अलौकिक कार्य भगवद्-

---

1. आप चढै अजसो चंड चारण असि चाढो ।
ऊ अहनि धू अद्र हो जगत सिगळोई जीमाडो ।
दांने कोड पै दियो भोमि मम अरथ भडारो ।
कळिजुग सतजुग करो आप नाम चा उवारो ।
संसार परै फेरो सुकर चहु दिशि कीरति चल्लवो ।
राजीया रीत राउळ तणी हेक निमिष कोई हल्लवो ।।

(—लेखक की प्रति, संख्या 176, पृष्ठ 136)

[तूने चारण को प्रचण्ड (उत्तम) अश्व पर आरूढ़ करके स्वय को कीर्ति के गौरव पर आरूढ करा दिया। उस दिन तूने इन्द्र बनकर सारे संसार को भोजन करवाया। करोड़ के दान के ऊपर मुझे भूमि देकर अर्थ का भण्डार (ही) दे दिया। (यों) कलियुग को सत्ययुग बनाकर (तूने) अपने नाम को उबार लिया (सामान्य राजा से ऊँचा उठाकर यशस्वी बना दिया)। (समस्त) संसार में अपना सुकृत प्रसारित कर दिया (अथवा—सभी संसार पर अपना योग्य हाथ फेर दिया—अर्थात् सबके ऊपर हो गया)। चारों दिशाओं में कीर्ति को प्रसारित कर दिया। हे राजाओ ! रावळ की इस रीति पर कोई एक निमिष ही चलकर तो दिखाओ (अर्थात् तुममें से कोई रावळ की तुलना करने मे समर्थ नहीं है)]।

कृपा के फल माने गए। उनका लोकप्रदत्त विरुद 'ईसरा सो परमेसरा' इसी का द्योतक है। लगभग 145 वर्ष पूर्व कविराजा सूर्यमल्ल मिश्रण द्वारा लिखित वंशभास्कर में इनसे सम्बन्धित कतिपय किंवदंतियों का उल्लेख किया गया है :

(क) मीसण शाखा के पिता-पुत्र चारण आनन्द और कर्मानिन्द द्वारका-यात्रा पर जा रहे थे। मार्ग में बारहठ ईसरदास मिले जो मद्य-मांस का सेवन करते थे। इसलिए वे दोनों उनसे दूर होकर चले और द्वारका पहुँचे। तब मंदिर के द्वार बंद थे। तभी ईसरदास पहुँचे; उनकी प्रार्थना पर पट खुल गए और द्वारकाधीश के दर्शन हुए। ग्लानिवश दोनों चारण समुद्र में कूद पड़े। वहाँ उन्होने दूसरी द्वारका देखी और भगवान को ईसरदास के हाथ से मद्य-मांस सेवन करते देखा। वे दोनों प्रभु-चरणों मे पड़ गए। भगवान ने ईसरदास को अपनी छाप दी और तीनों भक्तों को समुद्र से बाहर निकाला। तब से ईसरदास के वशजों द्वारा द्वारका-यात्रा के लिए आए हुए मनुष्यों को तप्त-छाप से चिह्नित किया जाना आरम्भ हुआ (—वंशभास्कर, तृतीय जिल्द, पृष्ठ 2100-2102, 2108-2110)। इस अवसर पर माडण भक्त का कहा एक गीत भी प्रसिद्ध है, जिसका पहला दोहला यह है :

> अरम थकी अरक कहै धिन ईसर, संकर कहै पयाळै सेस।
> सुर तेतीस कहै धिन ईसर, ईसर (रे) धिन कहै आदेस ॥

(आकाश से सूर्य कहते हैं, ईसरदास (तुम) धन्य हो। शंकर (शेषनाग के लोक—पाताल से (धन्य) कह रहे हैं। तेतीस (कोटि) देवता ईसरदास को धन्य कह रहे है—ईसरदास को धन्य कहते हुए उसे प्रणाम करते हैं)। अन्यत्र आनन्द-कर्मानिन्द के स्थान पर गोस्वामी तुलसीदास का नाम भी मिलता है।

(ख) अहमदाबाद (गुजरात) के सुल्तान ने घोड़ों का व्यापार करनेवाले चारणों को धनाढ्य समझकर उन पर एक लाख रुपए का कर लगा दिया। इसकी जमानत ईसरदास ने दी और द्वितीया के चन्द्रोदय तक चुका देने का वादा किया, किन्तु रुपए पास नहीं होने से समय पर चुका नहीं सके। सुल्तान ने उनको कैद कर लिया और नवीन चन्द्रमा के उदयोपरान्त मरवाने का निश्चय किया। ईसरदास ने चन्द्रमा का उदय होना ही रोक दिया (—वंशभास्कर, पृष्ठ 2102-2103, 2110)। इसको ईसरदास की करामात समझकर एक माह की अवधि और दी गई। जब इसका पता हळवद के राजा रायसिंह को लगा, तो उन्होंने यह राशि सुल्तान के पास पहुँचाई।

(ग) इसी प्रकार इस सुल्तान ने काठियावाड़ के अहीरों पर भी कर लगाया और न चुकाने की हालत में उनको मुसलमान बनाने की धमकी दी। ईसरदास ने पुन: एक लाख रुपए की जमानत दे दी किन्तु चुका नहीं सकने पर कैद कर लिए गए। तब रायसिंह ने अपनी राणियों के गहने बेचकर यह कर चुकाया और इनको छुड़वाया। रायसिंह की प्रशसा में ईसरदास की रचनाएँ मिलती हैं। इस दोहे में कवि को कारागृह से मुक्त करवाए जाने का उल्लेख है :

काराग्रह सूं काढियौ, बीदग बीजी बार।
अइयो रायांसिंघ रा, घर हंदा उपगार।।

एक गीत का एक दोहला इस प्रकार है :

कर झालूं गोळ घड़े स्रप काढू, धषतै तेले हाथ घरूं।
रायांसीह सरीसो राजा, कोई होवै तो धीज करूं।।1

(जलते हुए गोले को हाथ में लेकर, घड़े में से साँप निकाल कर, खोलते हुए तेल में हाथ डालकर मै संसार को विश्वास करा सकता हूँ कि रायसिंह के समान दूसरा राजा इस भूतल पर नहीं है (प्रति संख्या 247, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जयपुर)।

(घ) रियासत जूनागढ़ के अमरेली ठिकाने के ठाकुर बीजा सरवैया के पुत्र करण की साँप के काटने से मृत्यु हो गई थी। ईसरदास ने प्रभु को स्मरण कर उसको जीवित किया (वंशभास्कर, पृष्ठ 2082, 2087; कविराजा भैरवदान, चारणोत्पत्ति-मीमांसा-मार्तण्ड, पृष्ठ 3)। इस पर बीजा ने उनको बरसडा और ईसरिया—दो गाँव दिए। इस अवसर पर ईसरदास ने भगवद्स्तुतिरूप एक गीत कहा, जो अत्यन्त प्रसिद्ध है :

धानंतर मयंक हणू सुक्र धावो, नर पाळक रुद्र रिष निवड़।
एक बारगी करण उठाड़ो, त्रनपट तणो प्रागवड़।।1
जो तूं आइ नही जीवाड़ै, सरवहियो दीना चो साम।
तूझ तणो ओषद धानंतर, के दिन फेर आवसी काम।।2
करण जीवसी गुण मानै कवि, केइ जगत चा सरसी काज।
अमी कवण दिन अरथ आवसी, आविस नहीं जो ससियर आज।।3
आंणे ओषद करण उठाड़ो, जग सह मांनै सांच जिम।
हणुमत लखण तणी परसिध हुव, कवण मानसी हुती किम।।4

× × ×

सुर थे सही जिवाड़ण समरथ, भुवन त्रिणे सह साष भरै।
कोई धावो रे धावो धरम कज, करण मरै कवि साद करै।।6

[हे धन्वन्तरि, चन्द्रमा, हनुमान, शुक्र (—ग्रह अथवा शुक्राचार्य) ! दौड़ो ! हे विष्णु (संसार के पालक), शिव, ब्रह्मा (ऋषि) शीघ्रता (करो)। छहों वर्णों (षट्दर्शन याचक जातियों) के लिए अक्षयवट के समान (सर्वोत्तम दानी) कर्ण को एक बार स्वस्थ कर दो। यदि तुम आकर दीनों के स्वामी सरवैया (कर्ण) को नही जीवित करते हो, तो हे धन्वन्तरि ! तुम्हारी औषधि फिर किस दिन काम आएगी ? (यदि) कर्ण जीवित हो जाएगा, तो (यह) कवि (तुम्हारा) गुण मानेगा (और) संसार के कई काम भी पूरे होगे। हे चन्द्रमा ! यदि तुम्हारा अमृत आज काम नहीं आएगा, तो किस दिन काम आएगा ? औषधि लाकर कर्ण को जीवित करो ताकि सारा संसार (उस) सत्य में विश्वास कर सके, (अन्यथा) लक्ष्मण के विषय में हुई घटना के सम्बन्ध मे हनुमान की ख्याति को कौन मानेगा कि वह कैसे घटित हुई। हे देवताओ ! आप सभी जीवित करने में समर्थ हैं, तीनों भुवन इस (तथ्य) की साख भरते हैं। अरे (जीवनदान के इस) धर्म-कृत्य के लिए कोई तो दौड़ो ! कर्ण मर रहा है (जिसे उबारने के लिए) यह कवि (आप सबसे) पुकार कर रहा है]।

इस गीत में 'धरम' शब्द का प्रयोग हुआ है। सूर्यमल्ल मिश्रण ने उनको 'धन्वधराधामधरम महाभागवत द्वारहठ सुकवि' (वंशभास्कर, पृष्ठ 2105) कहकर प्रकारान्तर से क्या इस गीत की प्रामाणिकता की साक्षी तो नहीं दी है ?

(ङ) एक बार द्वारका जाते समय (कविराजा मुरारिदान के अनुसार, अमरेली जाते समय —प्रति संख्या 247, राजस्थान पुरा. मंदिर, जयपुर) ईसरदास वेणू नदी के किनारे एक छोटे से गाँव में सांगा गौड़ नामक एक राजपूत के यहाँ ठहरे। निर्धन होने पर भी उसने उनकी बड़ी आवभगत की और जब वे जाने लगे, तो उसने प्रार्थना की कि मैं एक कम्बल बनाकर भेंटस्वरूप आपको देना चाहता हूँ, लौटते समय अवश्य लेते जाएँ। इसी बीच सांगा अपने पशुओं को चराकर गाँव आते समय वेणू नदी को पार कर रहा था कि नदी मे बाढ़ आई और वह पशुओं समेत उसमें बह गया। डूबते समय उसने वहाँ खड़े लोगों के द्वारा ईसरदास को कम्बल देने की बात अपनी माँ तक पहुँचवाई। कुछ समय पश्चात् ईसरदास सांगा के घर पहुँचे और उसकी माँ से उसकी मृत्यु का समाचार जाना। वे तत्काल सांगा के डूबने के स्थान पर पहुँचे और आवाज देकर उसको बुलाया। सामने से आवाज आई कि मैं आ रहा हूँ और थोड़ी देर में सांगा अपने पशुओं समेत आ गया। इस सम्बन्ध में कतिपय दोहे प्रचलित हैं, जिनमें से एक यह है :

नदी बहंतो जाय, साद ज सांगरियै दियौ ।
कहज्यौ मोरी माय, कवि नै दीजै कामळी ।।

(नदी में बहकर जाते हुए सांगा ने आवाज दी कि मेरी मां से कहना कि वह कवि को कम्बल दे दे) (—डॉ. मोतीलाल मेनारिया, हालाँ झालाँ रा कुंडळिया, भूमिका) ।

अन्तिम दो घटनाओ का उल्लेख अन्य लेखको के अतिरिक्त ईसरदास बोगसा (जन्म सवत् 1908, गाँव सरवड़ी, जिला जालौर) ने भी किया है (वरदा, अप्रैल, 1966, पृष्ठ 27) ।

13

ईसरदास के समकालीन और परवर्ती अनेक भक्तो और कवियों ने बड़ी श्रद्धापूर्वक उनका स्मरण किया है। माडण भक्त का उल्लेख हो चुका है। नाभादास[1], राघवदास[2], रामदास[3], परसराम रतनू[4], और अन्य लोगों ने[5] अपनी-अपनी भक्तमालों और रचनाओ मे उनका उल्लेख किया है। गाडण केसौदास (संवत् 1610-15 से 1719-20) ने हरिरस के विषय मे लिखा है कि पाप रूपी दावानल से संसार रूपी कानन को जलता हुआ देखकर रोहड़िया

1. चौमुख चौरा चंड जगत ईस्वर गुन जाने ।
करमानन्द अरु कोल्ह अल्ह अक्षर परवाने । —भक्तमाल, पृष्ठ 801

2. कर्मानंद अरु अलू चौरा चड ईस्वर केसौ ।
दूदो जीवद नरो नराइण मांडण वेसो । —भक्तमाल, पृष्ठ 208

3. ईश्वरदास राम का प्यारा, हरिगुण कथिया अगम अपारा ।
—श्रीरामदासजी महाराज की वाणी, पृष्ठ 200

4. ईसर अलू करमाणद आणंद, सूरदास पुनि संता ।
माडण जीवा केसव माधव, नरहरदास अनंता ।
—भक्तमाल, वरदा, वर्ष 9, अंक 2, अप्रेल, 1966, पृष्ठ 3

5. बारहट ईसरदास जिणि हरिरस हरिगुण गायो ।
बारहट नरहरदास जिणि औतारचिरत बणायो ।
बारहट तेजसी जाणि कही कथा कवि बांणी ।
बारहट अलू जाणि जिणि लियो विष्णु पिछाणि ।
बारहट तो वारै वहै, खेत न खूदे पारका ।
अंनचीथे ऊझड़ वहै, लक्षण सेई गवार का ।।
—डॉ. माहेश्वरी, जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य, भाग 2, पृष्ठ 580

शाखा के राजा ईसरदास सूराउत ने हरिरस रूपी समुद्र का निर्माण किया।[1] बदले में ईसरदास ने भी उनकी 'नीसाणी विवेक वार' की प्रशंसा की।[2] और तो और, विक्रम की 18वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के सुप्रसिद्ध चारण भक्त कवि लालस पीरदान ने तो ईसरदास को अनेक विरुदों से सम्बोधित करते हुए उनको अपना भावगुरु या मानसगुरु माना है। परवर्ती कवि-भक्तों द्वारा अपने से परोक्ष और पूर्ववर्ती महात्माओं को भावगुरु या मानसगुरु मानने के कई उदाहरण मिलते हैं। ज्ञानीजी ने कबीर को और चरणदासजी ने शुकदेवजी को अपना भावगुरु माना था (वरदा, वर्ष 10, अंक 2, फरवरी-अप्रैल, 1967 में 'संत ज्ञानीजी और उनकी साखी')। इस सम्बन्ध में पीरदान की रचनाओं के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

1. ईसाणंद गुरु चित मां आंणां, वेदव्यास नां पछै वषांणां।

—गुण नाराइण नेह

2. चढ़िया छै चंचळै, अलष गुरु ईसर आपे।

× × ×

आरती अलष आराधना ईसरजी ना आरती ॥

—गुण अलष आराध

3. बारहठ अनै रिषि बराबरी, वेदव्यास ईसर वडा ॥3॥

× × ×

ईसर बारठ इसौ रमै वैकुंठ मे रांमति।
ईसर बारठ इसौ ग्यांन गोविंद जिसी गति।
ईसर बारठ इसौ अलष राषै सिरि ऊपरि।
ईसर बारठ इसौ इधकमां निमो अपरंपरि।
तू हुओ दास ईसर तणो, मनछा वाछा दोष दहि।
किसन रा पाव भेंटण करै, गुरु ईसर रा ग्यांन ग्रहि ॥

—गुण ग्यांन चरित

4. अरिजण नै अकरूर व्यास रिषि बारट ईसर।
5. सिनिकादिख समरां, बिरिद पै बारट ईसर।
6. ब्रह्म सतगुरु हूंता वडो, ईसरदास अनूप। —गुण अजंपाजाप

(पीरदान-ग्रन्थावली, क्रमशः पृष्ठ 1, 33, 38, 44, 61 तथा 71-72)

---

1. जग भाजळतो जांण, अघ दावानळ ऊपरा।
रचियो रोहड़ रांण, समद हरीरस सूरजत ॥

2. नीसाणंद नीसाण, केसव परमारथ कियौ।
मोह स्वारथ परमाण, सो वीसोतर बरण सिर ॥

सूर्यमल्ल मिश्रण ने अनेक प्रकार से ईसरदास की भक्त और कवि रूप में भूरि-भूरि प्रशंसा की है :

1. कलिकालभागवत मूर्द्धमणि बारहठ सुकवीश्वर (वंशभास्कर, पृष्ठ 2087)
2. महाभक्तेश्वरदास (वही, पृष्ठ 2109) आदि।

कविराजा भैरवदान ने उनको 'बुध अपार', 'तत्त्वसार जाननेवाले', 'नव प्रकार की प्रभुभक्ति सिद्ध करनेवाले' बताते हुए कहा है कि 'हरिरस' को पढ़ कर चतुर व्यक्ति मुक्ति प्राप्त कर लेता है (चारणोत्पत्ति-मीमांसा-मार्तण्ड, पृष्ठ 3, 4)।

ये कतिपय कथन ईसरदास की महत्ता बताने के लिए पर्याप्त हैं।

14

इन ईसरदास की प्रामाणिक रचनाओं के संकलन-सम्पादन में अत्यन्त सतर्कता, मूल स्रोतों की विश्वसनीयता और विभिन्न पाठ-परम्पराओं की छान-बीन की महती आवश्यकता है। इसके दो मुख्य कारण हैं : एक तो ईसरदास की प्रसिद्धि और दूसरे इस नाम के अनेक चारण कवि-भक्तों की रचनाएँ। इन ईसरदास के अतिरिक्त इस नाम के 13 चारणों का उल्लेख मिलता है (वरदा, वर्ष 9, अंक 2, अप्रैल, 1966 : श्री सौभाग्यसिंह शेखावत का निबन्ध), जिनमे कई कवि भी हुए हैं :

1. रतनू ईसरदास—राव वीरमदेव के पुत्र राव जयमल और बादशाह अकबर के संवत् 1624 में हुए चित्तौड़ युद्ध विषयक 19 छप्पयों के रचयिता।
2. वीठू ईसरदास—सुप्रसिद्ध चारण देवी करणीजी के पोते, देशनोक निवासी। बीकानेर के राव लूणकरण पर गीत रचना की।
3. बारहठ ईसरदास– सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध दत्ताणी के युद्ध में राव रायसिंह और जगमाल सीसोदिया के साथ था और उसी युद्ध में मारा गया।
4. बारहठ ईसरदास—दीता का पौत्र और सूरा का पुत्र।
5. मिश्रण ईसरदास—गोयंद का पुत्र, बूंदी के राव भोज हाडा का आश्रित। समकालीन वीरों पर डिंगल गीत रचयिता।
6. सांदू ईसरदास—भदौरा गाँव के निवासी सांदू माला का पुत्र। समकालीन वीरों पर डिंगल गीत रचयिता।
7. बारहठ ईसरदास—सूरजमल का पुत्र, फुटकर गीत रचयिता, रचना-काल—संवत् 1720-1781।

8. भादा ईसरदास—मेवाड़ का निवासी, महाराणा अमरसिंह और उनके पुत्र संग्रामसिंह (1767-1790) का कृपापात्र, फुटकर काव्य रचयिता ।
9. नांदू ईसरदास—जोधपुर के महाराजा अभयसिंह और बख्तसिंह का समकालीन, संवत् 1809 तक विद्यमान, फुटकर काव्य रचयिता ।
10. खिड़िया ईसरदास—तेजसी का पौत्र और हठमल का पुत्र, गोथेवास का निवासी ।
11. दधवाड़िया ईसरदास—सम्भवतः मारवाड़ का निवासी । भगवान के अवतारों की लीलाओं विषयक 119 कवित्तों का रचयिता ।
12. बारहठ ईसरदास—मारवाड़ के बड़ी ग्राम का निवासी, जोधपुर के महाराजा मानसिंह (1839-1900) का समकालीन, सरदारों पर डिंगल गीत रचयिता ।
13. बोगसा ईसरदास—गिरधर बोगसा का पुत्र । मारवाड़ के सरवड़ी ग्राम में संवत् 1908 में जन्म । भक्तिपरक काव्य का रचयिता ।

इससे इस बात का पता चलता है कि एक ही नाम के कई व्यक्तियों की रचनाओं को छांटने में कितनी सावधानी की आवश्यकता है ।

2

तत्कालीन स्थिति

1. राजनैतिक :

ईसरदास का समय मोटे रूप से विक्रम की सत्रहवीं पौन शताब्दी है। उनका आरम्भिक और अन्तिम जीवन राजस्थान में और शेष गुजरात-सौराष्ट्र में बीता। इस समय केन्द्रीय शक्ति के रूप में शेरशाह सूरी और मुग़ल वंश के—हुमायूं, अकबर और जहाँगीर दिल्ली के सम्राट थे।

जफरखाँ संवत् 1448 में दिल्ली सल्तनत की ओर से गुजरात का सूबेदार था। उसने संवत् 1457-58 में स्वतंत्र होकर, वहाँ एक नए मुस्लिम राजवंश की नींव डाली। इस राजवंश के समय का इतिहास पड़ोसी राज्यों के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष का इतिहास है। महमूद बेगड़ा इस वंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक था, जिसने संवत् 1568 तक शासन किया। संवत् 1592 में हुमायूं ने इस वंश के बहादुरशाह पर विजय प्राप्त की। संवत् 1594 में बहादुरशाह की मृत्यु के बाद गुजरात में अव्यवस्था फैलने लगी। पुर्तगालियों ने संवत् 1603 में गुजरात के बन्दरगाहों को लूटा। संवत् 1630 में अकबर ने दूसरी बार गुजरात को विजय किया किन्तु इसके बाद भी वहाँ समय-समय पर उपद्रव होते रहे। इसके पश्चात् किसी न किसी रूप में संवत् 1815 तक गुजरात साम्राज्य के सूबेदारों के अधिकार में रहा।

सत्रहवीं शताब्दी में गुजरात-सौराष्ट्र भूभाग में अनेक छोटे-छोटे राज्य और ठिकाने थे। समय-समय पर केन्द्रीय या क्षेत्रीय शक्ति-सन्तुलन बिगड़ने पर अनेक नए ठिकानों का उदय हो जाता था। इनके अस्तित्व का मुख्य आधार तो धन और जन की शक्ति था, किन्तु कभी-कभी इसको राजनैतिक चतुरता, आपसी सम्बन्ध और की गई सहायता का भी सहारा मिल जाता था। राज्य के अन्तर्गत राज्य और उसके अन्तर्गत भी छोटे-छोटे ठिकाने उस युग की राजनैतिक परिणति थी। रावळ जाम ने संवत् 1596 में नवानगर (जामनगर) शहर और राज्य की स्थापना की थी। इस भूमि की सनद उनके

पिता जाम लाखा ने गुजरात के बहादुरशाह को पावागढ़ की चढ़ाई में सहायता देकर प्राप्त की थी। फलस्वरूप यह राज्य अस्तित्व में आया। ईसरदास के जीवन-प्रसंग में रावळ जाम और दो-एक ठिकानों का उल्लेख किया जा चुका है।

राजस्थान में—मारवाड़ में राठौड़ राव सीहा संवत् 1300 के आसपास आए थे। कालान्तर में राठौड़ों द्वारा जोधपुर और बीकानेर जैसे बड़े राज्यों और छोटे-छोटे ठिकानों की स्थापना मध्ययुगीन राजस्थान के राजनैतिक इतिहास की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। इसके अतिरिक्त उस युग में यहाँ के अन्यान्य राजवंशों और ठिकानों के उत्थान-पतन और सत्ता-सम्बन्धों की कहानी जहाँ उदात्त गुणों और उच्चादर्शों के लिए बलिदान की गौरव-भावना भरती है, वहाँ आपसी कलह, फूट और सजातीय बन्धुओं के वध की वेदना-भरी करुणा और टीस भी उत्पन्न करती है। यह इतिहास अपनों को तोड़ने का इतिहास अधिक है, जोड़ने का कम।

जोधाजी ने राठौड़ राज्य की स्थापना करते हुए संवत् 1516 में जोधपुर नगर बसाया। उनकी वंश-परम्परा में राव मालदेव (जन्म-संवत् 1568, गद्दी-संवत् 1588, मृत्यु-संवत् 1619) अत्यन्त प्रतापी राजा हुए। संवत् 1600 में उनके और बादशाह शेरशाह सूरी के बीच हुआ युद्ध इतिहास-प्रसिद्ध है। ईसरदास के चाचा बारहठ आसोजी का राव मालदेव से विशेष सम्बन्ध था, जिसका उल्लेख हो चुका है। सत्रहवीं शताब्दी में उनके उत्तराधिकारियों में क्रमश: राव चन्द्रसेण (मृत्यु-संवत् 1637), मोटा राजा उदयसिंह (मृत्यु-संवत् 1652), सूरसिंह (मृत्यु-संवत् 1676) और गजसिंह (मृत्यु-संवत् 1695) राजा हुए।

जोधाजी के पुत्र राव बीकोजी ने संवत् 1545 में बीकानेर नगर बसाया और इस राज्य की स्थापना की। उनकी वंश-परम्परा में राव लूणकरण (मृत्यु-संवत् 1583) और राव जैतसी (मृत्यु-संवत् 1598) बहुत पराक्रमी राजा थे। जब शेरशाह सूरी ने राव मालदेव पर चढ़ाई की, तो राव जैतसी के पुत्र राव कल्याणमल (मृत्यु-संवत् 1630) भी शेरशाह की सेना में सम्मिलित हो गए थे। बारहठ आसोजी का इनकी वदान्यता पर लिखा डिंगल गीत मिलता है (गीतमंजरी, पृष्ठ 19)। राव कल्याणमल के पुत्र राजा रायसिंह (मृत्यु-संवत् 1668) अकबर के विशेष कृपापात्र और प्रसिद्ध शासक थे। बुरहानपुर में उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र दलपत-सिंह गद्दी पर बैठे, किन्तु उनको अपदस्थ कर संवत् 1670 में सूरसिंह (मृत्यु-

संवत् 1688) और उनके पश्चात् कर्णसिंह (मृत्यु-संवत् 1726) गद्दीनशीन हुए।

इन सबका उल्लेख कई कारणों से किया गया है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, रोहड़िया बारहठों का विशेष सम्बन्ध राठौड़ों से रहा है। ईसरदास के बड़े पिता (सूजोजी के बड़े भाई) बारहठ हरसूर और चाचा बारहठ आसोजी के अधिकांश डिंगल गीत और महत्त्वपूर्ण रचनाएँ राठौड़ों से सम्बन्धित हैं। आसोजी तो राठौड़ कर्मसी द्वारा प्रदत्त नाथूसर गाँव में भाद्रेस से आकर बस ही गए थे। फिर, राजस्थान के उल्लेख्य चारण कवियों ने राठौड़ शासकों, उनसे सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों, तत्सम्बन्धी घटनाओं और युद्धों आदि पर जितनी काव्य-रचना की है, उतनी अन्य किसी पर नहीं; और डिंगल गीत तो सैकड़ों की संख्या में लिखे हैं, जो इतिहास की भी अमूल्य थाती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि विक्रम की सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी राजस्थानी और हिन्दी साहित्येतिहासों के लिए अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है।

राजनैतिक दृष्टि से विक्रम की 16वी शताब्दी में कोई एक केन्द्रीय शक्ति अधिक समय तक शासन नहीं कर पाई थी। फलस्वरूप देश में अस्थिरता की स्थिति बनी रही। तब अनेक छोटे-मोटे राज्यों में बंटा हुआ यह देश आन्तरिक दृष्टि से विभक्त और उनकी पारस्परिक कलह के कारण छिन्न-भिन्न-सा हो चुका था। अवश्य ही राजपूतों ने राणा सांगा के नेतृत्व में संगठित होकर बाबर से मोर्चा लिया था, जिसमें वे विफल रहे, किन्तु बाद के शासकों के लिए, विशेषत: राजस्थान के शासकों के लिए, एक सगठित रूप में विदेशी आक्रमणकारी का सामना करना सम्भव नही रह गया था। ऐसी स्थिति में सत्रहवीं शताब्दी में बादशाह अकबर ने अपनी दूरदर्शिता से मुग़ल वंश को भारत का स्थायी केन्द्रीय राजवंश बना दिया। मुग़ल अब आक्रमणकारी न रहकर भारतीय हो गए थे। अकबर ने मुग़लों की भाँति हिन्दू सामन्तों को भी बराबरी का दर्जा दिया और उनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। इसके मूल में हिन्दुओं से उसका सम्बन्ध-सम्पर्क होना ही था। उसमें धार्मिक उदारता थी और दृष्टिकोण व्यापक था। उसने विभिन्न राज्यों, जातियों और धर्मो के लोगों को एक सूत्र में पिरोने का यत्न किया। अकबर के बाद जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी कमोबेश रूप में यही उदारतावादी नीति अपनाई। जहाँ तक राजस्थान और गुजरात-सौराष्ट्र का सम्बन्ध है, यहाँ के विभिन्न राजाओं को केन्द्रीय शक्ति के साथ अथवा उसके विरोध में और आपस में भी महत्त्वाकांक्षा, शक्ति-प्राप्ति, परस्पर वैमनस्य आदि अनेक कारणों से लड़ना पड़ता था। केन्द्रीय सत्ता का उद्देश्य अधिक से अधिक भूभाग पर कब्जा करना और क्षेत्रीय

शासकों की शक्ति को सीमित करना था। ऐसे ही क्षेत्रीय शासकों और सरदारों का लक्ष्य क्षेत्र-विशेष में अपना राज्य विस्तार करना, खोए राज्य को पुनः प्राप्त करना या नए राज्य की स्थापना करना और कभी-कभी बदला लेना आदि भी था। केन्द्रीय सत्ता से उनके तालमेल के ये मुख्य कारण थे। फलतः शक्ति-सन्तुलन बिगड़ते ही परस्पर युद्ध होना अनिवार्य था। छोटी-छोटी क्षेत्रीय सत्ताओं का आपसी टकराव केन्द्रीय सत्ता के हित में ही था। अनेक बार तो इस टकराव की स्थिति उत्पन्न भी कर दी जाती थी। यह तत्कालीन राजनीति का दुखद और कठोर सत्य है।

राजपूत शासकों में आन-मान और सम्मान का बड़ा ध्यान रखा जाता था। वैर का बदला भरसक लिया ही जाता था। किसी के उकसाने पर तथा छोटी-छोटी और कभी-कभी तो साधारण-सी बातों को लेकर उलझाव और शत्रुता हो जाती थी। किसी की ओर से सैनिक या पदाधिकारी के रूप में तो राजपूत युद्ध में लड़ते ही थे, किन्तु शरणागत, धरती की रक्षा, उसके विस्तार तथा धर्म और कर्त्तव्य पालन के लिए लड़ना वे अपना गौरव समझते थे। दूसरी ओर उनकी उदारता और वदान्यता भी स्पृहणीय थी। चारण कवि की लेखनी किसी ऐसे वीर,—उसके गुण, वैशिष्ट्य, युद्ध आदि को अपना उपजीव्य बनाती थी। ईसरदास की ऐतिहासिक-वीररसात्मक रचनाएँ ऐसे पुरुषों और प्रसंगों से सम्बन्धित है।

संक्षेपतः राजनैतिक दृष्टि से राजस्थान तथा गुजरात-सौराष्ट्र आदि क्षेत्र अनेक राज्यों और ठिकानों का समूह था।

2. धार्मिक-सांस्कृतिक :

यद्यपि उल्लिखित कारणों से राजस्थान और गुजरात-सौराष्ट्र ही नहीं, एक प्रकार से पूरा भारत भी राजनैतिक इकाई न होकर केवल भौगोलिक इकाई था, तथापि सांस्कृतिक दृष्टि से वह एक था और यही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात है। मध्ययुगीन भक्ति-उत्थान, लोकभाषाओं में भक्ति रचनाएँ तथा धार्मिक-सांस्कृतिक और सामाजिक परम्पराएँ इसके मूल में थीं। प्रत्येक बड़े और उल्लेख्य सन्त-भक्त का आविर्भाव लोकभाषा के नए मोड़ का सूचक है। मध्ययुग में समूचा देश लोकभाषाओं में रचित भक्ति-रचनाओं से सराबोर हो उठा था, यह भारतीय साहित्य के अध्येताओं से छिपा नहीं है। इसके अतिरिक्त वर्ण और जाति-व्यवस्था, ग्राम-संगठन और पंचायत, तीर्थाटन, मेलों, पर्व-त्यौहार-व्रतों पर आस्था-उत्साह आदि के कारण हिन्दू समाज का मूल ढाँचा अपरिवर्तित रहा। फिर, भक्ति-आंदोलन के कारण भक्ति-क्षेत्र में जाति-पाँति, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े आदि

की भावनाएँ शनैः-शनैः बदलने लगी थीं। लोक ने हिन्दू और मुसलमान—सभी सन्तों को समान भाव से पूजा और उनकी वाणियों को हृदयंगम किया। काजी महमूद और मीरां की वाणी समान रूप से लोगों के हृदय-हार बनीं। ईसरदास ने अपनी कृतियों के माध्यम से नाना रूपधारी एक परब्रह्म, मानव की महत्ता और मानव-मानव की एकता का सन्देश दिया और वे अपने उद्देश्य मे सफल रहे।

वाल्मीकि-रामायण, श्रीमद्भागवतपुराण और महाभारत (हरिवंश-पुराण सहित) मध्ययुगीन साहित्य के मुख्य उत्स हैं। यद्यपि भक्ति-परम्परा का मूल स्रोत प्राय: वैदिक ऋचाओं में ढूंढा जाता है तथापि भक्ति-आन्दोलन का मूल प्रेरक दक्षिण का वैष्णव मतवाद है, जिसको आळवार भक्तों ने प्रतिपादित किया। आळवार बारह बताए जाते हैं जिनमें नौ ऐतिहासिक व्यक्ति है; इनमें आण्डाल नाम की महिला भी थीं। इनमें से कई अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों में उत्पन्न हुए थे। आळवारों का समय भिन्न-भिन्न है, जिसकी ऊपरी सीमा नवीं शताब्दी मानी जाती है। ये आळवार बहुत बड़े भक्त और आध्यात्मिक व्यक्ति थे। सुप्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रामानुज का प्रादुर्भाव इनकी परम्परा में हुआ था। बारहवीं शताब्दी के आसपास शंकराचार्य के अद्वैतवाद, जिसे बाद के आचार्यों ने मायावाद भी कहा है, की प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई थी। भक्ति के लिए जीव और ब्रह्म की एकता उपयुक्त नही है, उसके लिए जीव और भगवान की उपस्थिति आवश्यक है। प्राचीन भागवत धर्म में और दक्षिण के आळवार भक्तों में इस बात की मान्यता थी। कालान्तर में चार आचार्यों और उनके सम्प्रदायों ने दार्शनिक स्तर पर भी मायावाद का विरोध किया। ये है—श्री रामानुजाचार्य का श्री सम्प्रदाय, मध्वाचार्य का ब्राह्म सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी का रुद्र सम्प्रदाय और निम्बार्काचार्य का सनकादि सम्प्रदाय। चारो के दार्शनिक मतो में भेद है किन्तु इन सबके अनुसार ब्रह्म अवतार लेता है, जीवात्मा भिन्न-भिन्न है और मायावाद का विरोध तो सबमें है ही। ईसरदास भक्ति के किसी सम्प्रदाय विशेष में दीक्षित नहीं थे। उनकी भक्ति गुरु पीताम्बर भट्ट के सान्निध्य और शास्त्र-ग्रन्थों के, विशेषतः श्रीमद्-भागवत के, अनुशीलन से सहज उत्पन्न और स्वयं-स्फूर्त भक्ति थी। उनकी भक्ति-रचनाएँ उनके संस्कार, अनुभव और भागवत आदि धर्म-ग्रन्थो के अध्ययन-मनन का परिणाम है।

यहाँ यह कहना भी आवश्यक है कि राजस्थानी में शांकर वेदान्त से प्रभावित रचनाएँ भी लिखी जाती रहीं। अनेक सन्तों की वाणियों में यह

प्रभाव अत्यन्त मुखर है। चारण कवि गाडण केसौदास की 'नीसाणी विवेक वार' पर शांकर वेदान्त की गहरी छाप है।

3. **साहित्यिक :**

ईसरदास की अधिकांश और प्रमुख रचनाएँ राजस्थानी में है। भाषिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से राजस्थान और गुजरात-सौराष्ट्र का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अनेक जैन और चारण कवियों तथा साधु-सन्तों का इन दोनों प्रदेशों में बराबर आना-जाना रहता था। ऐसे लोग दोनों को इन दृष्टियों से एक सूत्र में पिरोए रहते थे।

भाषा के ऐतिहासिक विकास-क्रम की दृष्टि से गुजराती और राजस्थानी—दोनों का उद्भव गुर्जर या गुर्जरी अपभ्रंश से है। शौरसेनी प्राकृत से शौरसेनी अपभ्रंश और गुर्जर या गुर्जरी अपभ्रंश का विकास हुआ। उल्लेख्य है कि 'गुर्जर' शब्द प्रदेशवाचक है, जातिवाचक नहीं, जैसा कि कुछ लोग समझते हैं। प्राप्त अपभ्रंश साहित्य के आधार पर उसके तीन भेद—पूर्वी, उत्तरी और पश्चिमी (जिसके अन्तर्गत दक्षिणी भी सम्मिलित है) किए गए हैं। अपभ्रंश का अधिकांश साहित्य पश्चिमी अपभ्रंश में लिखित है, वह एक मानक साहित्यिक भाषा के रूप में मानी गई। इसी पश्चिमी अपभ्रंश का दूसरा नाम गुर्जर या गुर्जरी अपभ्रंश है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसी से पुरानी राजस्थानी या पुरानी गुजराती का विकास हुआ और शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी का। लगभग संवत् 1100 से 1500 तक पुरानी राजस्थानी और पुरानी गुजराती एक ही थी। इन दोनों के एकत्व-बोधस्वरूप 'मरु-गुर्जर' नाम सर्वाधिक संगत है। मरु से मरु प्रदेश अर्थात् राजस्थान और गुर्जर से गुर्जर प्रदेश अर्थात् गुजरात—दोनों प्रदेशों की भाषाओं का बोध होता है। सिन्ध (अब पाकिस्तान) के थर पारकर और धाट का बहुत बड़ा भाग पहले मारवाड़ राज्य का ही एक भाग था। संवत् 1500 के आस-पास राजस्थानी और गुजराती पृथक्-पृथक् हुईं। इसके बाद में लिखी गई अनेक रचनाएँ भी दोनों भाषाओं की सम्मिलित धरोहर मानी जाकर, दोनों प्रदेशों में प्रसिद्ध हुई। पद्मनाभकृत कान्हड़दे-प्रबन्ध (रचनाकाल—संवत् 1512), गणपति कायस्थकृत माधवानल-कामकन्दला-प्रबन्ध (रचनाकाल—संवत् 1582) तथा मीराँबाई के पद आदि अनेक रचनाएँ इस प्रकार की है। चारण शैली की और लोक साहित्य की बहुत-सी रचनाओं के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। वस्तुतः उस समय की राजस्थानी और गुजराती की विभाजक रेखा अत्यन्त क्षीण है।

राजस्थानी साहित्येतिहास का काल-विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है :

1. संवत् 1100 से 1500—आरम्भिक काल,
2. संवत् 1500 से 1900—मध्यकाल तथा
3. संवत् 1900 से वर्तमान समय तक—अर्वाचीन काल ।

आरम्भिक काल की मुख्य काव्यधाराएँ थीं : 1. जैन काव्य, 2. चारण काव्य, और 3. लौकिक काव्य । प्रत्येक काव्यधारा की अपनी विशिष्ट शैली है। चारण काव्य के रचयिता चारण कुलोत्पन्न कवि ही नहीं, ब्राह्मण, राजपूत वैश्य, मोतीसर, भाट आदि भी रहे है । यह काव्य मुख्यत: दो रूपों में मिलता है : 1. पौराणिक-धार्मिक तथा 2. ऐतिहासिक-वीररसात्मक । प्रथम के अन्तर्गत श्रीधर व्यास रचित 'सप्तसती रा छन्द' (रचनाकाल—अनुमानत: संवत् 1455) की गणना है, जो मार्कण्डेय पुराण की दुर्गासप्तशती के आधार पर रची गई है। दूसरी के अन्तर्गत इसी कवि कृत रणमल्ल छन्द (रचनाकाल—संवत् 1457), बहादर ढाढी कृत वीरमायण (रचनाकाल—विक्रम की पद्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) और गाडण सिवदास कृत अचलदास खीची री वचनिका (रचनाकाल—अनुमानत: संवत् 1487-92) की गणना है । इनके अतिरिक्त खिड़िया चानण, गाडण पसायत, हरसूर आदि कवियों की फुटकर रचनाएँ मिलती हैं, जो दोहों-सोरठों, डिंगल गीतों और छप्पयों में लिखी गई हैं ।

मध्यकाल राजस्थानी साहित्य का स्वर्णयुग है । इस काल मे उल्लिखित काव्यधाराओ के अतिरिक्त दो और धाराएँ इस प्रवाह मे मिलीं : सन्तकाव्य-धारा और आख्यान काव्य-धारा । इस काल में उल्लेखनीय 14 सन्त-सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें अनेक की परम्पराएँ आज भी विद्यमान हैं । सन्त-काव्य के रचयिता दो प्रकार के हैं : 1. विभिन्न सन्त-सम्प्रदायों के प्रवर्तक और उनकी परम्पराओं के कवि तथा 2. सम्प्रदायेतर कवि । राजस्थान में बारहठ ईसरदास से पूर्व और समकालीन प्रवर्तित-स्थापित निम्नलिखित सम्प्रदाय है :

प्रवर्तक	सम्प्रदाय
1. जाम्भोजी (1508-1593)	विष्णोई
2. जसनाथजी (1539-1563)	जसनाथी
3. दादूदयालजी (1601-1660)	दादू पंथ
4. हरिदासजी निरंजनी (17वीं शताब्दी)	निरंजनी
5. परशुरामदेवाचार्य (17वीं शताब्दी)	निम्बार्क
6. अग्रदासजी (17वी शताब्दी)	राम भक्ति में रसिक या माधुर्य
7. कृपारामजी (17वीं शताब्दी)	गूदड़ पंथ

इनके अतिरिक्त गोरखनाथ द्वारा संगठित नाथ-सम्प्रदाय के बारह पंथों में से पाँच—सत्यनाथी, पावपंथी, कपिलानी (कपिलपंथी), वैराग्यपंथी और रावळपंथी का यहाँ विशेष प्रचलन रहा तथा सुप्रसिद्ध नौ नाथों में पाँच नाथों—गोरख, जालंधर, गोपीचन्द, भरथरी और चर्पट का। गोरखनाथ का समय दसवीं शताब्दी अनुमित है। चर्पटनाथ भी समय-विशेष के लिए उनके समकालीन माने जाते हैं। रज्जबजी ने सर्वंगी में चर्पटनाथ को चारणी से उत्पन्न होना बताया है। इन तथा अन्य आरम्भिक नाथों की प्रकाशित रचनाओं की भाषा विक्रम की सोलहवीं शताब्दी से पूर्व की नहीं है; उनमें अभिव्यक्त कुछ भाव थोड़े पुराने हो सकते हैं। इनकी भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव साफ झलकता है। सत्रहवीं शताब्दी के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाथ कवि पृथ्वीनाथ थे। उनकी रचनाओं पर भक्ति का भी गहरा रंग चढ़ा हुआ है। नाथ-परम्परा में सांस्कृतिक-धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से यह बदलाव महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार गुजरात में भी नाथ-सम्प्रदाय प्रचलित था। ईसरदास ने अनेक बार गोरखनाथ का श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए नाथपंथी अभिवादन-पद्धति का प्रचुर प्रयोग किया है। मध्यकाल में सन्तों की रचनाओं के साथ नाथ-वाणियाँ भी लोकप्रसिद्ध थीं। अनेक संग्रह-ग्रन्थों में उक्त दोनों प्रकार की वाणियाँ विभिन्न राग-रागिनियों के अन्तर्गत लिखी मिलती हैं।

महत्त्वपूर्ण सम्प्रदायेतर भक्त कवियों में पीपा, काजी महमूद, मीराँबाई और ज्ञानीजी आदि है। गुजरात के नरसी मेहता ईसरदास के किंचित् पूर्ववर्ती और/अथवा ईषत् समकालीन थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनेक सन्त-भक्त, भक्ति की धारा में महान् योग दे रहे थे। अनुमान किया जा सकता है कि ईसरदास उपर्युक्त और कबीर आदि अन्य सन्त-भक्तों की रचनाओं तथा प्रसिद्ध आख्यान-काव्यों से अवश्य परिचित रहे होंगे। तत्कालीन प्रचलित जैन धर्म और इसके विभिन्न गच्छों—लोंकागच्छ, तपागच्छ, खरतरगच्छ आदि से वे पूर्णतः परिचित थे, यह उनकी निन्दास्तुति से स्पष्ट है। सन्त शैली में लिखित उनके हरजस सन्तकाव्य धारा की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। आख्यान-काव्य गुजराती और राजस्थानी साहित्य की विशिष्ट देन है। ये विभिन्न लोकप्रसिद्ध राग-रागिनियों में गेय और बोलचाल की सरल भाषा में रचे जाते थे। इनके कथानक मुख्यतः उन इतिहास और पुराण-प्रसंगों से लिए जाते थे, जो सामान्यतः सबके जाने-पहचाने होते थे। इनमें यथोचित संवादों की योजना की जाती थी। इनका मुख्य उद्देश्य जनसाधारण में स्वस्थ सांस्कृतिक परम्पराओं को संजीवित और उच्चादर्शों के प्रति आस्था बनाए रखना था। डेल्हजी (लगभग संवत् 1490-1550) कृत 'कथा अहमंनी' (कथा अभिमन्यु), पदम भगत कृत 'हरजी रो व्यांवलो' या 'रुकमणी मंगळ' (रचनाकाल—लगभग संवत् 1550),

मेहोजी कृत रामायण (रचनाकाल—लगभग संवत् 1575) आदि राजस्थानी के प्रमुख आख्यान-काव्य है।

पौराणिक-धार्मिक और भक्तिपरक चारण काव्य :

मध्यकाल में चारण कवियों और इस शैली मे लिखने वाले अन्य कवियों की संख्या बहुत बडी है। बारहठ आसोजी, चारण तेजोजी, बारहठ कान्होजी, कवियो अल्लूजी, राठौड़ पृथ्वीराज, सांदू मालो, आढो दुरसो, गाडण केसौदास, झूलो सांयो, दघवाड़ियो माधोदास आदि कतिपय महत्त्वपूर्ण नाम हैं। इनमें सांदू मालो और आढो दुरसो ने ऐतिहासिक-वीररसात्मक काव्य का सृजन किया। शेप कवियों ने भी इस कोटि की थोड़ी-बहुत रचनाएँ लिखी हैं किन्तु उनकी विशेष प्रसिद्धि भक्तिपरक तथा पौराणिक-धार्मिक रचनाओं के कारण है। गुणवत्ता, साहित्यिक-सौन्दर्य, विषय-वैविध्य और लोकप्रसिद्धि की दृष्टि से उनकी ऐसी रचनाओं का ऊँचा स्थान है। ईसरदास ने भी उक्त दोनों प्रकार की रचनाएँ लिखी हैं किन्तु विशेषता यह है कि वे उनसे भिन्न और निराली है। विषय-वैभिन्न्य, निगूढ भक्ति, भाव-गाम्भीर्य, वस्तु-संयोजन, शैली और शब्द-चयन, अनूठी उक्तियों, उद्देश्य तथा वैचारिक दृष्टि से वे इस प्रकार की अन्य रचनाओं से पृथक् दिखाई देती हैं। इस क्षेत्र में उन्होंने नए कीर्तिमान स्थापित किए, जो आज भी अक्षुण्ण है।

3

रचनाओं का विवेचन

1

ईसरदास के नाम से प्राप्त रचनाओं की संख्या बहुत बड़ी है किन्तु ऐसी सभी रचनाएँ उनकी नहीं है। उनकी रचनाओं की प्रामाणिकता और संख्या के विषय में कतिपय बातें ध्यान में रखनी आवश्यक है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, ईसरदास नाम के अनेक चारण कवि हुए हैं तथा नाम-साम्य और प्रसिद्धि के कारण किसी अन्य की कुछ रचनाओं का इनके नाम से प्रचलित हो जाना असम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर की संवत् 1790 की लिखित एक हस्तलिखित प्रति, संख्या 159, में 'ईसरदास' की 6 छोटी-छोटी रचनाएँ—गुरु महिमा, मनशिक्षा, विरह-विलाप, विरह-वेदना, करुणा रस और फुटकर पद 'ईसर ग्रन्थावली' नाम से उपलब्ध हैं। इनकी रचना-शैली इन बारहठ ईसरदास की रचना-शैली से भिन्न है और ये किसी अन्य ईसरदास की रचनाएँ हैं। इस ओर सकेत भी किया जा चुका है (डॉ. मोतीलाल मेनारिया, हालाँ झालाँ रा कुंडळिया, भूमिका, पृष्ठ 6-7, पाद-टिप्पणी)।

बारहठ ईसरदास और उनकी रचनाओं की लोकप्रसिद्धि के कारण भी श्रद्धालुओ द्वारा जाने-अनजाने प्रक्षेप किए जाते रहे है। हरिरस इसका उदाहरण है। इसकी प्राचीनतम प्रति में कुल छन्द संख्या 162 है, जो बढ़ते-बढ़ते वर्तमान म सवा चारसौ से भी ऊपर पहुँच गई है। इनमें पाठ-भेद और पाठ-विपर्यय तो बहुत हैं ही। तीसरे, (क) उनकी रचना और (ख) कोई विशेष रचना, उनके या किसी अन्य कवि के नाम से मिलती या बताई जाती है। उदाहरणार्थ (क) बारहठ ईसरदास की 'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' के 24-25 छन्दों को बारहठ आसोजी की रचना बताया गया है, जिसकी चर्चा आगे की गई है।

(ख) इसी प्रकार एक गीत लीजिए, जिसके दो दोहले इस प्रकार हैं:

नक्र तीह निवाण निबळ दाय नावै
सदा वसै तटि जिके समंद।

मन बीजै ठाकुरै न मानै
रावळ ओळगिये राजिंद ।।1
भेट्यौ जेह धणी भाद्रेसर
चक्रवत अवर चढै नह चीत
वास विळास मलैंतर वासी
परिमल बीजै करै न प्रीत ।।2

[जो ग्राह सदा समुद्र के तट पर रहते हैं, उन्हें कम पानी वाले जलाशय रुचिकर नहीं लगते। राजाओं में श्रेष्ठ रावळ की सेवा करने के बाद मन दूसरे ठाकुरों की सेवा करने को नही मानता (1)। जिस प्रकार मलयाचल के रहनेवाले के लिए वहाँ के तरुओं की सुगन्ध में विलास कर लेने पर दूसरी सुगन्धियाँ अच्छी नहीं लगतीं, उसी प्रकार भाद्रेस के (इस कवि) द्वारा (अपने) स्वामी के रूप में रावळ से भेंट करने के बाद, दूसरे चक्रवर्ती राजा भी उसे नहीं सुहाते (2)]।

प्रसिद्ध है कि जब ईसरदास अपने चाचा बारहठ आसोजी के साथ पहली बार रावळ जाम के दरबार में गए, तब उन्होंने उनकी प्रशंसा में यह गीत कहा था। प्रो. नरोत्तमदास स्वामी ने इसको बारहठ ईसरदास रचित माना है (राजस्थानी वीर गीत, गीत संख्या 45, पृष्ठ 53) और दूसरी ओर किशोरसिंह बार्हस्पत्य ने इसको बारहठ आसोजी का कहा हुआ बताया है (हरिरस, 'महात्मा ईश्वरदास जी का जीवन चरित्र', पृष्ठ 22-23)। आधार दोनों का ही हस्तलिखित प्रतियाँ है। एक ही रचना को दो व्यक्तियों द्वारा रचित बताए जाने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। डिंगल गीतों, दोहों-छप्पयों आदि फुटकर छन्दों और सन्तवाणियों के विषय में यह बात विशेष रूप से कही जा सकती है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा। राणा प्रताप की प्रशंसा में कहा गया एक प्रसिद्ध गीत है :

नर जेथि निमाणा नीलज नारी
घणूं विनडिजै घणा घट
आवे ते हाटे ऊदाऊत
वेचै किम रजपूत वट ।।

—'घणूं...घट' के स्थान पर 'अकबर गाहक बट अबट' पाठ भी मिलता है।

(जहाँ पुरुषों को झुकना पड़ता है और नारियों की लज्जा ली जाती है तथा अनेक प्रकार से उनकी मर्यादा भंग होती है, (अकबर के उस नवरोजे) बाजार में उदयसिंह का पुत्र (राणा प्रताप) आकर अपनी राजपूती शान को कैसे गँवाए ?)

इसको सुप्रसिद्ध कवि राठौड़ पृथ्वीराज रचित बताया गया है (वेलि

क्रिसन रुकमणी री, भूमिका, पृष्ठ 31, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् 1931) किन्तु अन्य अनेक हस्तलिखित प्रतियों में यह आढो दुरसो का रचा बताया गया है, यथा : क—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर, ग्रन्थांक 717-719, ख—इन पक्तियों के लेखक के संग्रह की प्रति संख्या 176, पृष्ठ 145, ग—एसियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता की प्रति सख्या—C 15 (14) आदि)। अतः स्पष्ट है कि ईसरदास की रचनाओं और उनके पाठों की प्रामाणिकता के विषय में अत्यन्त सावधानी, सतर्कता, खोज और पाठ-संपादन की वैज्ञानिक प्रणाली का अवलम्बन आवश्यक है।

2

अभी तक ईसरदास की रचनाओं में सर्वाधिक चर्चा 'हरिरस' की हुई है। उसके भिन्न-भिन्न सात संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त 'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया', 'देवियाण' और कुछ फुटकर रचनाएँ ही प्रकाशित है। शेष सभी रचनाएँ अप्रकाशित हैं और विभिन्न ग्रन्थागारों और व्यक्तिगत संग्रहों की हस्तलिखित प्रतियों में लिपिबद्ध मिलती है। इनकी खोज और प्राप्ति एक कठिन तथा श्रम और व्यय-साध्य कार्य है।

प्रस्तुत परिचय और विवेचन ईसरदास की रचनाओं की अनेक हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर है। इनका परिचय इस प्रकार है :

1. **राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान**, उदयपुर की प्रतियाँ :

ग्रंथांक	लिपिकाल—संवत् :	रचना
(1) क—4293(8)	1696	हरिरस
ख—4293(9)	1699-1700	निंदा स्तुति (अपूर्ण); लिपिकार ने रचना का यह नाम नही दिया है।
(2) 3612	अठारहवीं शताब्दी	(गुण) रास कीला
(3) 596	1735	(गुण) आपण
(4) 597	1735	भगवत हस

2. **राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान**, जयपुर की प्रतियाँ :

ग्रंथांक	लिपिकाल—संवत्	रचना
(1) 246	विक्रम 20वीं शताब्दी	निन्दा स्तुति
(2) 247	विक्रम 20वीं शताब्दी	ईसरदास का जीवन-चरित एवं तत्सम्बन्धी ज्ञातव्य पत्र।

(3) 273 (3)	वि० 20वीं शताब्दी	अष्टपदी नीसाणी
(4) 711 (24)	1806	आरती—'नारायण कमल लोचन'।

3. **सिटी पैलेस, पोथीखाना** (खास मोहर संग्रह), जयपुर की प्रतियाँ :

ग्रंथांक	लिपिकाल—सवत्	रचना
(1) 3933(5)	1797	कन्हैया चरित्र (बाललीला)
(2) 4330(18)	1745	गुण वैराट
(3) 4328(7)	1783	कुंडळिया जसा हरिधमलौत रा जाड़ेचा रा

4. **सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय,** कलकत्ता की प्रतियाँ :

(1) हस्तलिखित प्रति संख्या 20, जिसमें बारहठ ईसरदास की भक्ति-परक सभी बड़ी और अधिकांश छोटी रचनाएँ लालस पीरदान द्वारा संवत् 1792 में लिपिबद्ध प्राप्त हैं; केवल दो रचनाएँ—'रास कीला' और 'गुण वैराट' संवत् 1807 में अन्यों द्वारा लिपिबद्ध है।

(2) श्री रघुनाथ प्रसाद सिहानिया द्वारा संग्रहीत राजस्थानी साहित्य के अप्रकाशित काव्य, जिल्द 1, इसमें 'निन्दा स्तुति' काव्य लिपिबद्ध है (पृष्ठ 391 से)।

(3) वही, जिल्द 3, इसमें 'देवीदीवाण' लिपिबद्ध है (पृष्ठ 451 से)।

(4) वही, जिल्द 4, इसमें 'ईसरदास जी कृत वाणी'—13 'हरिजस' और 1 गीत—'मूगटा मनां रांम रोलो मुप, दुप दाळद मेटण सब दोप' (4 दोहले) लिपिबद्ध है (पृष्ठ 374, 379 और 380 से)।

(5) वही, जिल्द 5, इसमें 'क्रस्नध्यान' (अपरनाम--बाललीला, कन्हैया-चरित्र) लिपिबद्ध है (पृष्ठ 574 से)।

5. **श्री सीताराम लालस,** जोधपुर से प्राप्त प्रतियाँ :

(1) संवत् 1791 में लालस पीरदान द्वारा लिपिबद्ध प्रति, जिसमें ईसर-दास कृत 'भगवंत हंस' भी है।

(2) श्री कृष्ण की 'बाल लीला' उन्होंने किसी से सुनकर लिखी और भेजी है।

(3) संवत् 1990 की लिपिबद्ध 'निंदा स्तुति' की प्रति।

6. **श्री रावत सारस्वत,** जयपुर से प्राप्त :

उन्नीसवीं शताब्दी की एक हस्तलिखित प्रति, जिसमें 'किसनध्यांन' (अपर-

नाम बाललीला, कन्हैयाचरित्र) और एक गीत—'माधाजी मात तू तात तू पांण दीवांण मो'—लिपिबद्ध है।

7. **श्री राधाकृष्ण नेवटिया**, कलकत्ता की संवत् 1682 में लिपिबद्ध प्रति, जिसमें अनेक रचनाओं के साथ ईसरदास के दो पद—'विद्या एक पढावो रांम' तथा 'बैरागी रांम मंनावो रे' प्राप्त है।
8. प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक के संग्रह की संवत् 1839 में लिपिबद्ध प्रति, जिसमें ईसरदास के अनेक डिंगल गीत और दोहे मिलते है; तथा हरिरस की कई प्रतियाँ।

इस पुस्तक में दिए गए उद्धरण विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त पाठानुसार ही है। अपनी ओर से लेखक ने उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया है।

3

विषय-वस्तु की दृष्टि से ईसरदास की रचनाएँ दो प्रकार की हैं :

1. ऐतिहासिक-वीररसात्मक, तथा
2. भक्तिपरक (पौराणिक-धार्मिक ओर आध्यात्मिक)।

पहले प्रकार की रचनाएँ अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। वे ये हैं—

क—डिंगल गीत और फुटकर दोहे, तथा

ख—हालाँ झालाँ रा कुंडळिया।

डिंगल गीत और दोहे :

इनमें विभिन्न घटनाओं तथा व्यक्तियों—उनकी वीरता, वदान्यता, उदारता आदि गुणों और कार्यो के वर्णन हैं। प्राप्त गीतों की संख्या 21-22 है, जो मुख्यत: इन व्यक्तियों पर लिखे गए हैं :—झाला रायसिह मानसिहौत, रावळ जाम लाखावत, लाखा जाम, सरवहिया बीजा दूदावत, जाड़ेचा जसा हरधमलौत, आबू बाढेल, भीम बाढेल, हंदोरत, साहिब जाड़ेचा, रावळ सावंतसिहौत, रणमल बणहल तथा राव खंगार और रावळ जाम में हुई पखाळद की लड़ाई विषयक आदि। झाला रायसिह और राठौड़ प्रताप पर 14 फुटकर दोहे मिलते है। परिशिष्ट में इनकी सूची दी गई है।

प्राय: सभी गीत ओजपूर्ण हैं। भाव-सौन्दर्य, भाषा की कसावट, शब्द-चयन और प्रवाह की दृष्टि से उनकी तुलना 'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' से की जा सकती है। उदाहरण के लिए, झाला रायसिंह की प्रशंसा में लिखा यह गीत द्रष्टव्य है :

खेधँ लग खत्री खड़ग हथ खारा, मद ही इन्द्र सभा मिळिया।
बीजी बार सरग पर बेऊ, साहेब—रासौ सांफळिया ।।1

यथि कज यळा ओथि कज अपछर, सूर न सकिया करी समास।
कडतळ राण रायधण कीधौ, कळह वळी दूजो कविळास ॥2
आडा अमर हुवा अणियाळाँ, जोध न सकिया करी जुवा।
हेकाँ रासौ-बीकौ हुइया, हेकाँ साहेब पबौ हुवा॥3
रासौ-साहेब बाग्या रूकै, सघळौई संसार सुवौ।
मोटौ जुध हिक हुवौ माळियै, हेक वळै जुध सरग हुवौ॥4
आधौ आध अपछरा आवी, सुर गंध्रव किया समभाव।
मानाउत—हामाउत मिळिया, इन्द्रसभा बिच बैठा आव॥5

(—हालाँ झालाँ रा कुंडळिया, भूमिका, पृष्ठ 12)

[हाथ में तीक्ष्ण शस्त्र धारण कर बैर से भरे हुए दो मदमस्त क्षत्रिय—साहेबजी और रायसिंह इन्द्रसभा में एकत्र हुए और दूसरी बार स्वर्ग में लड पड़े। इधर (जगत में) पृथ्वी के लिए और उधर स्वर्ग में अप्सराओं के लिए झाला राजा रायसिंह ने दूसरा युद्ध किया। वे (दोनों) वीर परस्पर विवाद का अन्त (मेल) नहीं कर सके। देवता (लोग) इन वीरों का बीच-बिचाव करने आए किन्तु वे इनको अलग नहीं कर सके। फलतः एक ओर रायसिंह और बीकोजी हुए और दूसरी ओर साहेबजी और पबोजी। रायसिंह और साहेबजी तलवार से लड़े जिससे संसार शोभायमान हुआ। इनका एक युद्ध माळिया में हुआ और दूसरा स्वर्ग में। आखिर देवताओं और गन्धर्वों ने दोनों में आधी-आधी अप्सराएँ बाँटकर समाधान किया। फलस्वरूप मानसिंह का पुत्र (रायसिंह) और हमीर का पुत्र (साहेबजी) (सब बैर भूलकर प्रेमपूर्वक) एक दूसरे से मिले और इन्द्रसभा में आकर बैठे]।

हालाँ झालाँ रा कुंडळिया :

50 कुंडळिया छन्दों[1] की यह रचना एक विशेष घटना पर आधारित है :

हळवद के स्वामी झाला मानसिंह ने अपने पुत्र रायसिंह को अपने राज्य से निकाल दिया। वह अपने बहनोई—ध्रोळ के स्वामी हाला जाड़ेचा जसा (जसराज) के पास आकर एक वर्ष तक रहा। एक दिन दोनों चौपड़ खेल रहे थे कि नवानगर (जामनगर) से भुज जाते हुए एक व्यापारी ध्रोळ के रास्ते नगाड़ा बजाते हुए निकला। नगाड़े का शब्द सुनकर जसा ने कहा—यह नगाड़ा कौन बजाता है? ऐसा कौन है, जो मेरे गाँव की सीमा में नगाड़ा बजाता हुआ निकले? उसने अपने आदमी को नगाड़ा बजानेवाले की खबर

1. डॉ. मोतीलाल मेनारिया द्वारा सम्पादित हालाँ झालाँ रा कुंडळिया, उदयपुर, सन् 1950

लाने को भेजा; साथ ही वह नगाड़ा बजाने वाले से लड़ने को उद्यत भी होने लगा। इस पर रायसिह ने कहा कि यह मार्ग का गाँव है, अनेक आएँगे-जाएँगे, आप किस-किसके साथ लड़ाई करेंगे ? जसा ने उत्तर दिया कि जो मेरी सीमा में नगाड़ा बजाता हुआ निकलेगा, उससे मैं लड़ाई करूँगा। राय-सिह ने कहा—ठीक है, तब मैं नगाड़ा बजाऊँगा। तभी नौकर ने आकर खबर दी कि व्यापारी लोग हैं जो मार्ग चलते हुए नगाड़ा बजा रहे हैं। जसा बोला—व्यापारी हैं, इसलिए छोड़ता हूँ, नही तो अवश्य लड़ाई करता। चार-पाँच माह बाद मानसिह की मृत्यूपरांत, रायसिह जब ध्रोळ से बिदा होने लगा, तब भी उसने नगाड़ा बजाने की बात दोहराई। लोगों ने पहले तो समझा कि साले-बहनोई हँसी-मजाक कर रहे है, किन्तु अब समझे कि कुछ न कुछ उपद्रव अवश्य होगा। ऐसा ही हुआ। हळवद की गद्दी पर बैठने के कुछ समय पश्चात् उसने ससैन्य ध्रोळ में आकर नगाड़ा बजाया। इसके लिए रावळ जाम का मना करना भी बेअसर हुआ। दोनों ओर से जमकर युद्ध हुआ जिसमें झाला जसा काम आया। यह घटना संवत् 1620 या 1621 की है। इसका बदला लेने के लिए रावळ जाम ने साहब हमीरोत को ससैन्य भेजा किन्तु युद्ध में वह भी मारा गया और रायसिह के भी अनेक घाव लगे पर वह बच गया। (—नैणसी की ख्यात, भाग 2, काशी, पृष्ठ 463-468 तथा जोधपुर, भाग 2, पृष्ठ 244-252)।

ईसरदास ने इन तीनों पर डिंगल गीत भी लिखे हैं। आज के युग मे ऐसी बात पर युद्ध होना आश्चर्यमिश्रित खेद उत्पन्न करता है किन्तु मध्ययुग में इस प्रकार की छोटी-छोटी घटनाओं पर मनमुटाव तथा लड़ाई होने के अनेक उदाहरण मिलते है। रायसिह और जसा साला-बहनोई थे, भानजा और मामा नहीं, जैसा कि कुछ लोगों ने लिखा है। ध्यातव्य है कि यह कथा 'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' का आधार मात्र है क्योंकि यह रचना कथात्मक न होकर अधिकांश में भाव-प्रधान है। यह जसाजी की प्रशंसा में लिखी गई ईसरदास के फुटकर कुण्ड-लियों का संकलन है, जिसका प्रत्येक पद्य अपने आप में पूर्ण है। इसमें दो प्रकार के छन्द हैं—वर्णनात्मक और भावात्मक। इसके अधिकांश छन्दों के पहले दो चरणों में कोई मौलिक भाव, सिद्धान्त या नीति-वाक्य कहकर उसको बाद के चरणों में जसाजी अथवा उसके वीरों पर घटाकर उसे पल्लवित किया है (हालाँ झालाँ रा कुण्डळिया, भूमिका, पृष्ठ 14)। वर्णनात्मक छन्दों की संख्या अत्यल्प है। यह वीर रस की प्रौढ़, प्रभावशाली और ओजस्वी रचना है। कतिपय अन्य वीर-काव्यों की भाँति इसमें द्वित्व वर्णों का प्रयोग और शब्दों की तोड़-मरोड़ न होकर सहज और स्वाभाविक भाषा गृहीत हुई है। प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग, वीर रस के अनूठे भाव और उनका प्रका-

शन-लाघव, संकेतात्मक उल्लेख और चित्रोपम वर्णन इसकी विशेषता है। कवि ने जिस भाव की व्यंजना की, उस पर मानों अपनी मुहर लगा दी। इनमें से अधिकांश पद्य स्त्री के मुख से— जसाजी की राणी से— कहलाए गए हैं, जिनमें वह अपने पति, सखियों आदि के सामने अपने हृदयोद्गार प्रकट करती है। कोमलता और स्वाभाविकता से मण्डित इसमें भाव-सौन्दर्य की झाँकी झिलमिलाती है। इस रचना ने अनेक परिवर्ती कवियों को प्रभावित किया है।

वर्णनात्मक रूप से की गई भावाभिव्यक्ति विषयक एक छन्द द्रष्टव्य है :

अरक जसो जगि आथमे गो चकवा गुणियांह।
भवणि अंधारौ भंजसी त्रिभुवण कहि कुंण तांह।
तियां अंधियार कुण भंजसी भुवणि तिणि।
भए नर संजोगी बिजोगी नर भुवणि।
सुकवि चकवा दुषी सुषी कुण करद सक।
(आ) जि जगि आथमे जसो दूजौ अरक।।28

(—जयपुर की प्रति से)

[गुणीजनों (विद्वानों, कवियों, कलाकारों) (रूपी) चक्रवाकों के लिए सूर्य (रूपी) जसोजी (इस) संसार से अस्त होकर चला गया। कहो, (अब) तीनों भुवनों में (ऐसा) कौन है (जो) उनके ससार का (जीवन का) अंधकार मिटाएगा? तीनों भुवनों में उनका अंधकार कौन मिटाएगा? (जो लोग इस संसार में उसके आश्रय से संयुक्त होकर) संयोगी (सुखी) थे, (वे) लोग (अब उसके आश्रय से वियुक्त होकर) वियोगी (दुखी) हो गए। सुकवि (रूपी) दुखी चक्रवाकों को अब कौन सुखी करने में समर्थ है? (अर्थात् कोई नहीं है)। आज जसोजी (रूपी) दूसरा सूर्य संसार से अस्त हो गया]।

युद्ध विषयक किसी प्रसंग को लेकर भावों का प्रकाशन अनेक पद्यों में मिलता है। उदाहरणार्थ दो छन्द द्रष्टव्य हैं :

धीरा धीरा ठाकुराँ गुम्मर कियाँ म जाह।
महँगा देसी झूँपड़ा जै घरि होसी नाह।
नाह महँगा दियण झूँपड़ा त्रिभै नर।
जावसौ कड़तळाँ केमि जरसौ जहर।
एक-हथ पेखिसौ हाथ जसराज रा।
ठिवंताँ पाव धीरा दियौ ठाकुराँ ।।2

[हाला जसाजी की स्त्री झाला रायसिंह को सम्बोधित कर कहती है) हे ठाकुर! धीरे-धीरे चलो, गर्व करते हुए मत जाओ। यदि मेरे निडर पति घर पर हुए तो वे अपने झोंपड़ों को बहुत महँगे मोल पर देंगे। हे झाला! (युद्ध

में) जाकर कैसे तुम जहर को पचाओगे ? (वहाँ) तुम खड्गधारी जसराज के पराक्रम को देखोगे। (इसलिए) हे ठाकुर! चलते हुए अपने पाँवों को धीरे-धीरे रखो, अर्थात् क़दमों की आहट मत होने दो]।

ऊठि अढगा बोलणा कामणि आखै कत ।
अै हल्ला तो ऊपरां हूंकळ कळळ हुवंत ।
हूंकळै सीधवौ वीर कळहळ हुवै ।
वरण कजि अगछरां सूरिमां बह बुवै ।
त्रिजड़ हथ मयद जुध गयद-घड़ तोलणा ।
ऊठि हरधवळ सुत अढगा बोलणा ॥5

[जसोजी की स्त्री कहती है कि) हे विकट बोलनेवाले ! उठ। यह आक्रमण तेरे ऊपर है। (युद्ध का) शोर हो रहा है। सिंधू राग गूँज रहा है। वीरों का कोलाहल हो रहा है। शूरवीरों का वरण करने के लिए बहुत सी अप्सराएँ फिर रही हैं। युद्ध में गज-सेना का सामना करनेवाले खड्गधारी, मृगेन्द्र, हर धोल-सुत, विकट बोलने वाले ! उठ] !

इनमें अनुरणात्मक और सांकेतिक शब्दों, शब्द चित्रों और ओजस्वी भाव की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है। इस रचना का यह नाम किसने दिया, इसका पता नहीं चलता। विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में इसके पृथक्-पृथक् नाम मिलते हैं।

सूर्यमल्ल मिश्रण के वंशभास्कर के अनुसार तो ईसरदास ने 700 छन्दों में ('सतसई' के रूप में) हालों की कीर्ति सुरक्षित रखी थी (तृतीय जिल्द, पृष्ठ 2091) और इसके टीकाकार बारहठ कृष्णसिंह के शब्दों में बारहठ ईसरदास के कहे हुए 'हालों-झालों के कुंडलिये' राजपूताना में इस समय (संवत्-1956) भी बहुत प्रसिद्ध है' (वही, पादटिप्पणी)। सूर्यमल्ल के इस कथन का आधार और 'सतसई' का कोई पता नहीं चलता। बारहठ कृष्णसिंह ने भी कुण्डलियों की संख्या के सम्बन्ध में कोई बात नहीं कही है।

हाल ही में इस रचना के विषय में एक विवाद खड़ा हुआ है। श्री पुष्कर चन्दरवाकर द्वारा सम्पादित 'कुंडळीया जसराज हरधोलाणी रा' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित हुई है (प्रकाशक—सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट, सन् 1974)। इसमें 24 कुण्डलिया छन्द हैं जो इस 'हालां झालां रा कुण्डळिया' के ही है किन्तु जिनको ईसरदास के चाचा बारहठ आसोजी की रचना बताया गया है। सम्पादक ने दो प्रतियों के आधार पर इसका सम्पादन (?) किया है जिनमें सुरेन्द्रनगर के श्री देवीदानजी से प्राप्त एक प्रति का पाठ ग्रहण कर पादटिप्पणी में दूसरी प्रति के पाठान्तर दिए हैं। दोनों प्रतियाँ सम्प्रति सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के चारण साहित्य-हस्तलिखित ग्रन्थ-संग्रह में हैं। श्री देवीदानजी

से प्राप्त प्रति मे ही इन 24 कुण्डलियों के रचयिता बारहठ आसोजी बताए गए हैं; दूसरी प्रति में रचयिता का नाम नहीं है।

सम्भवत: दोनों प्रतियों में लिपिकाल का उल्लेख नहीं है और सम्पादक ने भी इस विषय में कुछ नहीं कहा है, जिसका संकेत अवश्य किया जाना चाहिए था। सम्पादक के कथन का सारांश इस प्रकार है :

1. कि 'कुंडळीया जसराज हरधोलाणी रा' तथा 'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' पृथक् रचनाएँ है,
2. कि 'कुंडळीया जसराज हरधोलाणी रा' बारहठ आसोजी की रचना है, क्योंकि उल्लिखित एक प्रति मे ऐसा लिखा मिलता है तथा कतिपय विद्वान् ऐसा मानते हैं।
3. चूंकि ये 24 छन्द और ईसरदास कृत 'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' के 25 छन्द एक से हैं, अत: सम्भावना है कि ये 24 छन्द तो आसोजी ने रचे किन्तु बाद मे ईसरदास ने इनमे बढ़ोतरी की।

वैसे दबी जुबान से सम्पादक महोदय यह भी मानते हैं कि '50 कुंडळियावाली हस्तप्रत ईसरदास जी नी खरी, पण ते सिवाय 24 कुंडळिया नी पण हस्तप्रत प्राप्य बनेल छे, जे आसाजी कृत छे ने तेमा 'आसो रोहडियो' तेवो नामोल्लेख पण छे' (पृष्ठ 36)। ऊपर के तीसरे और इस कथन में स्पष्ट ही विरोधाभास है। सम्पादक के सभी तर्क निराधार और पूर्वग्रह-ग्रसित हैं और प्रमाण-पुष्ट तो है ही नही। वस्तुत: मूल बात पाठ-सम्पादन से सम्बन्धित है। इस सम्बन्ध में दो प्रश्नों पर विचार किया जाना चाहिए :

1. क्या ये 24 छन्द ईसरदास कृत 'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' के 50 छन्दों से भिन्न रचना के हैं ?
2. ऐसा है तो, और नहीं है तो,—इनका रचयिता कौन है ?

पहला प्रश्न लें।

प्रकाशित दोनों संस्करणों के पाठ और पाठान्तरों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह बात सिद्ध होती है कि पहली रचना—'कुंडळीया जसराज हरधोलाणी रा' दूसरी रचना—'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' से किसी प्रकार भिन्न नहीं है। यदि किसी लिपिकार ने बिना तिथि-मिती की किसी एक प्रति में इसके रचयिता का नाम आसोजी लिख दिया, तो अन्यथा प्राप्त प्राचीन पुष्ट और प्रबल प्रमाणों के समक्ष इसको आसोजी की रचना नहीं माना जा सकता। किन्तु सम्पादक महोदय इसको आसोजी की रचना सिद्ध करने पर तुले हुए प्रतीत होते हैं। जहाँ कहीं स्वयं को तर्क या प्रमाण नहीं मिलते, वहाँ वे स्व० डोलरराय मांकड़ प्रभृति विद्वानों की राय का—मात्र राय का—हवाला

देते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि अन्यथा उपलब्ध पुष्ट प्रमाणों के साक्ष्य में पूर्वग्रह और राय का कोई मूल्य नहीं है।

सम्पादक ने इसके पाठ के प्रति मनमानी बरतते हुए कुछ ऐसे पाठ दिए है जिनसे लगे कि यह रचना दूसरी से भिन्न है। उदाहरणार्थ 'घड़' और 'घड़ा' का तात्पर्य सेना, फौज, समूह, दल आदि हैं, जिसके सैकड़ों प्रयोग डिंगल गीतों और अन्य रचनाओं मे मिलते है। इनके स्थान पर सम्पादक ने इसी अर्थ में 'धड' और 'घडा' शब्दों का प्रयोग किया है जो सर्वथा गलत है। इसको नागरी लिपिजन्य भूल नहीं कहा जा सकता क्योकि 'शब्दकोश' (पृष्ठ 82) में 'ध' के अन्तर्गत लिखकर ये ही अर्थ दिए हैं। इसी प्रकार, 'विषकन्या' के स्थान पर 'वपकन्या' (छन्द 17,18), 'घना, घणा' (अधिक के अर्थ में) के स्थान पर 'धनाई' (छन्द 6),'रोडियै' (मेनारिया—रोक रखने के अर्थ में) के स्थान पर 'रोहियै' (छन्द 7) आदि अनेक उदाहरण दिए जा सकते है। इसके अतिरिक्त दोनों संस्करणों की सातों प्रतियों के (मेनारिया—5, चन्दरवाकर—2) शब्दों के रूप-भेदों को छोड़कर पाठ और पाठान्तरों की साम्य-वैषम्य स्थिति नीचे दी जा रही है। पहले छन्द-संख्या और पाठ श्री चन्दरवाकर के संस्करण के हैं, कोष्ठक में डॉ. मेनारिया के संस्करण की छन्द-संख्या और पाठ/पाठान्तर हैं :

1. छन्द 2 (2), 8 (9), 10 (12), 14(21)—कोई अन्तर नही है। 2 में 'झुलर' के स्थान पर, मेनारिया-'गुम्मर' है।

2. छन्द 3, 6, 7, 11, 13, 14, 15, 17, 19, 20, 22, 24, में नागरी लिपि-जन्य मूल अथवा/और पर्यायवाची शब्दों के अतिरिक्त पाठान्तर नगण्य हैं, यथा—3 (3) दळखस (दलथंभ), रूड़ी (भली),
   6 (10) चाल (आळ, आळि), आंभ (अभंग),
   7 (8) भड (रिण), नहेंचे (धीरा),
   11 (18) जांण (अवर, नांहि), ये (जुध)—'ये' का प्रयोग असंगत है।
   13 (33) कंतड़ै (कंत तणै, कंत रो), पोईण (कमल), घट (भड़), घाट घड़ (घाट धड़),
   15 (20) कणशाई (बरड़ाय), घणो (घणा)—'घणो' का व्याकरणिक प्रयोग गलत है।
   17 (22) दल (घड़),
   19 (23) फेरा देऊंतै (फेरा लेते), कहर (अह्वर),
   20 (28) सत्र (भड़),
   22 (19) औलंभो कहै (ओलंबो दियो),
   24 (29) बाखांणिया (साराहिया)।

3. छन्द 5(6) की एक पंक्ति (पाँचवीं), मलिपिओ (म्हालियो) तथा— 18(25) की दो पंक्तियों (अन्तिम दो) में किंचित् पाठभेद और पाठ-विपर्यय है।

4. शेष 4 छन्दों—1 (1), 4 (4-5), 16 (38) और 18 (25) में दो या अधिक पाठभेद है, जिनमें पर्यायवाची शब्द भी सम्मिलित हैं।

प्रसिद्ध कृतियों में ऐसा और इस तरह का पाठभेद होना सामान्य बात है किन्तु इस कारण कृति-विशेष को, उसके मूल रचयिता के स्थान पर किसी अन्य की रचना घोषित नहीं किया जा सकता।

इससे स्पष्ट है कि पहली रचना दूसरी से भिन्न नही है, तद्विपरीत पहली के छन्द, दूसरी से चयन करके रखे गए हैं।

अब दूसरे प्रश्न को लें। डॉ० मेनारिया के संस्करण की पाँचों प्रतियों—A,R,C,D,S के लिपिकाल-क्रमशः संवत् 1698, 1736, 1875, 1881 और 1931-1941 (के बीच) हैं, जिनमें यह ईसरदास की कृति बताई गई है। उनके अनुसार, 'इसकी 18-20 हस्तलिखित प्रतियाँ हमारे देखने में आई है और सभी में ईसरदास का नाम दिया हुआ है' (राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ 156, संवत् 2008)। विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में यह ईसरदास की ही रचना बताई गई है, यथा—

(क) विद्याभूषण-ग्रन्थ-संग्रह-सूची, क्रमांक 245(2), 126 ज (2), राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर;

(ख) कैटालॉग ऑफ द राजस्थानी मैन्यूस्क्रिप्ट्स, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, प्रति संख्या 126, 133;

(ग) सिटी पैलेस, पोथीखाना (खास मोहर संग्रह) जयपुर, की संवत् 1783 में लिपिबद्ध प्रति, संख्या 4328 (7) जिसकी पुष्पिका यों है—'ईती श्री बारट ईसरजी रा कहा कुंडला सपुरणां लीषतु सुरतीराम सुभंवेतु संबत 1783 मीती मां बदी 5।'

इसके अतिरिक्त परम्परा से भी यह इन्हीं की कृति मानी जाती है। सूर्यमल्ल मिश्रण और बारहठ कृष्णसिंह का उल्लेख कर आए हैं। संपादक के इस अनुमान का भी कोई आधार नहीं कि ईसरदास ने आसोजी के रचे ये 24 छन्द अपनी रचना में लिए। निष्कर्षतः सभी साक्ष्यों से 'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' के 50 छन्द ईसरदास की रचना सिद्ध होते हैं। 'कुंडळीया जसराज हरधोलाणी रा' के 24 छन्द इसी से चयन किए गए हैं और वे आसोजी की रचना नहीं हैं।

4

भक्तिपरक (पौराणिक-धार्मिक और आध्यात्मिक) फुटकर रचनाएँ :

छन्द-संख्या की दृष्टि से ऐसी रचनाएँ दो प्रकार की हैं—छोटी और बड़ी। भक्तिपरक छोटी रचनाओं में (क) डिंगल गीत, फुटकर छन्द और (ख) गेय पदों की गणना है जिनकी सूची परिशिष्ट में दी गई है। इनके अतिरिक्त और भी ऐसी रचनाएँ हो सकती हैं।

संक्षेप में, डिंगल गीतों और फुटकर छन्दों का विषय हरि नाम-जप, भगवद् प्रेम, महिमा और गुणगान, राम और कृष्ण-चरित, कल्कि-वर्णन, नीति-चेतावनी, अनेकता में एकता आदि हैं। गीतों में परमेश्वर के प्रति अगाध निष्ठा, तल्लीनता और प्रेम, आत्मविश्वास, शरणागति और आत्मनिवेदन की भावनाएँ मुखरित हुई हैं। ये भावनाएँ गहरी, शान्त और मन्थर गति से बहती हुई नदी की भाँति सहज और आयासहीन भाषा मे बद्ध होकर प्रवाहित हुई हैं। कवि की भक्ति-साधना की उच्च भावभूमि का द्योतक एक गीत द्रष्टव्य है :

सांमी श्रीरंगौ माहवौ मान सरोवर, भाव तणै जळ भरियो।
माहरो हंस रमै तिण मांही, पाप सग परिहरियो ॥1
गई विथा त्रिसना मळ गळियो, नरक पाप भौ नांही।
लहरां लियै परम रस लीणो, मुकद सरोवर मांही ॥2
जै माही सुक जिहड़ा जोगी, रमै रमण दिन राता।
परमनिधान सरीर पखाळै, गोरख जिसा गिनाता ॥3
अन पँखियाँ भखैता ओ जळ देखंतां ही दोरौ।
सूभन वचन श्रवण साम्हळतां, सदगत हंसां सोरो ॥4
लाछि भ्रतार लील लहरीरव, ताप पाप भौ टाळै ॥
ईसर तणौ रंमै हंस आतम, ब्रहम ग्यांन विचाळै ॥5
(—कलकत्ता की प्रति तथा प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग 12)

[श्री रंगस्वामी, माधव रूपी मानसरोवर, भावरूपी जल से परिपूर्ण है। मेरा हंस रूपी प्राण-पखेरू पाप-कर्म छोडकर उसमे रमण करता है। (अब) तृष्णा और व्यथा मिट गई है तथा मल का नाश हो गया है, अब मुझे नरक और पाप का भय नही है। (मेरा मन) मुकुन्द रूपी सरोवर में, परम रस में लीन होकर लहरों का आनन्द ले रहा है। जिस सरोवर मे शुकदेव जैसे योगी रात-दिन रमण करते है, उस परम निधान (फलप्राप्तियों के श्रेष्ठ स्थान—सरोवर में) गोरखनाथ जैसे ज्ञानी भी अपने शरीर (भौतिक मायाजाल से आच्छन्न मन)

का प्रक्षालन करते है। दूसरे पक्षियों का नाश कर देनेवाला यह परमात्म-तत्त्वरूपी जल, उनके लिए तो देखने मात्र से ही कष्टदायक है। जिन्होंने आपके महत्त्व को श्रवण-मनन आदि से जान लिया है, हंस रूपी उन आत्माओं के लिए यह सुखप्रद और सद्गति देनेवाला है। लक्ष्मीपति का यह लीला-सरोवर सांसारिक ताप और पाप के भय को मिटानेवाला है। (उस) ब्रह्मज्ञान के बीच ईसरदास का आत्मा रूपी हंस रमण करता है।]

भक्त कवि ने अनेक प्रकार से भगवान की सर्वशक्तिमत्ता और भक्त-वत्सलता का उल्लेख करते हुए, वेदों के मुख्य प्रतिपाद्य—सगुण-निर्गुण ब्रह्म के भी साररूप—'नाम'-स्मरण पर बल दिया है। इस सम्बन्ध में यह गीत देखें :

जाणि रे हरि अन्तर जामी, राम भणे रघुनन्दन राजा।
वानर सेनक आलि करावै, पाथरे जल बांधी पाजा ॥1
माहव जाणि वखाणि मयापति, सार संसार पनौ सू सारे।
तूं न विसारि मना मुख आतम, तारि मया घण दुत्तर तारे ॥2
बाळण वेद सभेद सही विधि, वेद स भेद सवे मुख वायक।
कंटक जेणि वहै मधकंटक, नाम प्रणाम नमो सुर नायक ॥3
ए अविलंब विलबण ईसर, रचिये राम तणै गुणि रीजो।
बंध सुबंध अछे बलि बंधण, बंध सुबंध नहीं कोई बीजो ॥4
(—प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग 12)

[अरे मन ! रघुकुल नरेश राम का भजन कर जिसने वानर सेना को युद्ध में लड़ा दिया और जल पर पत्थर तैरा दिए (समुद्र पर सेतु-रचना की)।

कृपालु माधव को पहचान कर उसका गुणगान कर। संसार के सार रूपी उस मर्म को ग्रहण कर। हे मन ! मुख से और हृदय से उसे विस्मृत मत कर। कृपापूर्वक तार देनेवाले उसने ही अनेक न तरने योग्य लोगों को तारा है।

(वही) भेद सहित वेदों को सही विधि से प्रवर्तित करनेवाला है। सभी वेदवेदांग उसीके मुख से कहे गए हैं। जिसके द्वारा सभी कष्ट दूर कर दिए जाते हैं, उस मधु-संहारक, सुरनायक (भगवान विष्णु) के वन्दनीय नाम को ही प्रणाम कर।

हे ईसरदास! वही निराश्रितों के आश्रय है, (उस) राम के गुणों में ही रंजित रह। वह बलि को बाँधनेवाला ही सभी बन्धुओं में श्रेष्ठ बन्धु है, दूसरा कोई बन्धु उसके समान नहीं है। (अथवा—बलि को बाँधनेवाले के नाम का बंधन (नियम पूर्वक जप) ही सबसे अच्छा बंधन है]।

इन रचनाओं में लोक-प्रसिद्धि की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना 'अष्टपदी' (अपरनाम—असट पदवी, अष्टपदी नीसाणी, आरती) है। यह

राजस्थान में, विशेषतः पश्चिमी राजस्थान में प्रभात-वेला में 'परभाती' के रूप में गाई जाती है। 'मना रे रामो नाम हरे' इसकी स्थायी टेर है। यह अत्यन्त ही लोकप्रिय और प्रचलित रचना है :

अवरंण वरंण धरण धर अंबर, असरंण सरंण हरे।
क्रिसन कमल दल कुंज बिहारी, ताकी भगती करे।
मना रे रामो नाम हरे ॥1
पुणियो त्यां ग्रभवास न पायौ, निम दिन किसन नरे
राज सभा द्रोपां पति राखी, पूरण चीर परे॥ मना रे ॥2
जद (गह ?) गजराज तांतुअै ग्रहियो, जळ भीतर जद रे।
उग्रह करण वेगि हरि आए, पाउ तिआ पकरे ॥ मना रे ॥3
दस सिर राज विभीषण दीन्हो, साझ्यौ संमर सरे।
सरग उभै कीयौ रवि साखी, सारंगधर समरे। मना रे ॥4
भवदुष दळिदि सुदामा भांगो, थाप्यौ धूय थिरे।
अनंत भगत आगै ऊधरिया, अनंत अनत उचरे॥ मना रे ॥5
अंबरीष रुषमांगद अहिवंन, अरिजण निकुळ अरे।
सहदेव भीमसेन राजा से, त्रीकम नाम तरे ॥ मना रे ॥6
विधना माता कोदम दळती, रामण तणै घरे।
ऊ (ओ) लिषती मसतकि अवरां रै, ओ लिषिया अवरे (उणरे)
मना रे ॥7
असटपदी गाई कवि ईसर, धणी सूं घ्यांन धरे।
सीषै सुणै राजि रा सेवग, केसव क्रिपा करे ॥ मना रे ॥8

(—कलकत्ता की प्रति; राजस्थान प्रा. वि. प्रतिष्ठान, जयपुर की प्रति संख्या 273)

[नहीं वरण करने योग्य (लोगों—पापियों) का वरण करनेवाले, धरती और आकाश को धारण करनेवाले, अशरण को शरण देनेवाले, कमल-समूहों से युक्त कुंजों में विहार करनेवाले, उस कृष्ण की भक्ति कर! अरे मन! हरिरूपी राम नाम का जप कर। (अथवा राम नाम में समाहित हरि का जप कर)।

जिन्होंने उस नाम का उच्चारण किया, उन्होंने पुनः गर्भवास नहीं पाया। हे नर! रात-दिन उस कृष्ण (का ध्यान कर) जिसने राज-सभा में द्रौपदी के चीर की पूर्ति कर उसकी लज्जा रखी।

जब जल के भीतर ग्राह ने मस्त गजराज को पकड़ लिया (तो उसे) छुड़ाने के लिए हरि तुरन्त (पाँवों से चलकर ही) आए। उन पाँवों को पकड़!

दशसिर रावण का राज्य विभीषण को देकर, बाण से उसका भ्रमरवेध साधकर, उसको स्वर्ग में खड़ा कर दिया, जिसकी साक्षी सूर्य और चन्द्रमा हैं। उस सारंगधर राम का स्मरण कर।

जिसने सुदामा का दरिद्रता रूपी भवदुख भंजन कर दिया और ध्रुव को स्थिर रूप से स्थापित किया तथा पहले भी जिसने अनन्त भक्तों का उद्धार किया, उसी अनंत (विष्णु) के नाम का उच्चारण कर।

अम्बरीष, रुक्मांगद, अभिमन्यु, अर्जुन, नकुल, सहदेव, भीमसेन—सभी राजा त्रिविक्रम के नाम से तर गए।

माता विधाता रावण के घर मे कोदम (जंगली अनाज) दलती थी। वह दूसरों के भाग्य-लेख लिखती थी, इसने उसके (अवरे के 'स्थान पर' उण रे पाठ मानने पर) भाग्य का लेख लिखा। (अथवा 'अवरे' पाठ मानने पर, जो भाग्य लेख वह लिखती, उससे भिन्न यह लिख देता)।

कवि ईसर ने यह अष्टपदी (उस) स्वामी का ध्यान धर कर गाई है। जो भगवान के सेवक सुनकर हृदयंगम करेंगे उन पर केशव की कृपा होगी]।

विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में कवि की रचनाओं के साथ यत्र-तत्र अनेक फुटकर छप्पय भी मिलते है, जिनमे कतिपय मे उनकी मर्णिति भी है। ऐसे कुछ छप्पय 'कळस रो कवित्त' के रूप में कई रचनाओं के अन्त में मिलते है। इनका मुख्य विषय भी हरिगुणगान और ईशभक्ति है।

गेय पद (हरजस, सबद) :

ईसरदास के नाम से 15 पद प्राप्त हुए हैं (देखें—परिशिष्ट)। इनमें 2 पद तो संवत् 1682 मे लिपिबद्ध संतवाणी संग्रह की एक प्रति (कलकत्ता) के फोलियो 262 पर 'ईसर चारण को पद' के अन्तर्गत मिलते हैं और उनमें 'ईसर', 'ईसरो' की टेक है। निश्चित रूप से तो यह नही कहा जा सकता कि इसमें का 'चारण' शब्द इन ईसरदास को ही द्योतित करता है, किन्तु भक्ति-क्षेत्र और लोक में ईसरदास और उनकी रचनाओं की प्रसिद्धि को देखते हुए ये उनकी रचनाएँ मानी जा सकती हैं। शेष 13 सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता में प्राप्य राजस्थानी साहित्य के अप्रकाशित काव्य संग्रह, जिल्द 4 में लिखे मिलते है। इनमें से एक पद (हरजस) में ईसरदास के गुरु पीताम्बर का भी उल्लेख है। इनमें एकाध पद पर कबीर आदि सन्तों की वाणियों की छाया भी लक्षित होती है। इस सम्बन्ध में और ठोस सामग्री के अन्वेषण की आवश्यकता है।

सभी पद संत शैली में, बोलचाल की भाषा में लिखित और विभिन्न राग-रागिनियों में गेय हैं। इनमें निर्गुण भक्ति का स्वर मुखरित है तथा पिण्ड-

ब्रह्माण्ड—सबमें हरि की व्याप्ति, सहज-समाधि, घट में ही परम-तत्त्व की प्राप्ति, नाम-स्मरण और माहात्म्य, सत्संगति, गुरु-महिमा आदि विषय वर्णित है। इनमें भाव और भाषा की सरलता और सहजता सर्वत्र लक्षित होती है। यहाँ यह उल्लेख्य है कि डिंगल गीतों में जहाँ सगुण और सगुण-निर्गुण समन्वित ब्रह्म का भक्तिभावपूर्ण वर्णन है, वहाँ इन पदों में निर्गुण ब्रह्म और 'पिण्डे सोई ब्रह्मण्डे' का। रुचि, पात्रता और साधना-भेद के कारण भक्त कवि द्वारा समन्वय का यह प्रयास स्तुत्य है। राग बिलावल में गेय इस पद में नाम-स्मरण की विद्या पढ़ाने का भाव-भीना निवेदन द्रष्टव्य है :

विद्या एक पढावो रांम। निस दिन रटूं तुम्हारा नाम ॥ टेक
ररौ ममौ उचरूं मुष बांणी। रोम रोम रस पीवैं प्रांणी ॥1
अषिर अलष रहै घट मांहीं। परंम पाठ हम भूलि न जांहीं ॥2
विद्या बड़ी वीनती थोरी। सनमुष सुरति राषि प्रभु मोरी ॥3
ईसर प्रणवै अंतरजामी। गुरमुषि पाठ देहु घण नांमी ॥4

नीचे के पद में निर्गुण राम की पूजा और साधना तथा 'अपने आप' उद्धार का सन्देश दिया है। यह राग रामगिरी में गेय है :

बैरागी रांम मनावो रे।
पगां बिन नाचौ पाणि बिन पूजौ, फूलां बिन माळ चढ़ावो रे ॥टेक
हळ बिन पिड़ौ बीज बिन वाहौ, पांणी बिन षेत सिचावो रे ॥
जेथि केथि न छै तेथि निपावो, सोई हरि उधरावो रे ॥1
जंम बिन मरौ आगि बिन दाझौ, बाभण बिण क्रिया करावो रे।
सुसल्या हाथे सीह सुधावो, मछ पै मेव मरावो रे ॥2
बिण सींगणि गुणबाण चलावो, कीड़ी मुषि अनल समावो रे।
दुष सुष न छै तिहि देस सिधावो रैंणां सूर उगावो रे ॥3
जांण बिना ईसरो जंपै, थे आपणां आप उधारौ रे।
इहि अषिर नो भेद जु बूझै सो वचने गुरु हमारो रे ॥4

ये दोनों ही पद संवत् 1682 की प्रति से लिए गए हैं। नीचे के 'सबद' में निर्गुण, निराकार, निर्लेप और घट-घट वासी केवल एक—'नकुला-राम' का स्वरूप वर्णित है :

अवधू नकुला रांम हमारा है। टेक।
नहीं मेरा रांम दसरथ घर जनमिया, नहीं कोई लिया अवतारा।
एको ही रांम दूजो किम कहियै, ज्यांरा सकल पसारा ॥1
नहीं मेरा रांम वंदराबन बासी, नहीं कोई कासी मंझारा।
मेरा रांम मैं मुझ में देषिया, ताय लिया तंत सारा ॥2

भणियां गुणियां रे पंडित जोसी, उण ही वेद सूं न्यारा ।
तीन गुणां में अळूझ रहिया, पच-पच मुवा बिचारा ।।3
जैसे लूण गळ्यो रे पाणी में, मळ गळ हुवो इकसारा ।
ईसरदास पीतंबर गुर पाया, अब क्यों करै पुकारा ।।4
(—राजस्थानी साहित्य के अप्रकाशित काव्य, जिल्द 4, पृष्ठ 380)

5

बड़ी रचनाएं : ईसरदास की भक्तिपरक बड़ी रचनाएँ ये है :

1. हरिरस	2. गुण रास कीला (क्रीड़ा)
3. गरुड़ पुराण	4. देवियाण (देव्यायण, देवियाइण, देवी-दीवाण)
5. गुण आपण	6. गुण आगम
7. बाल लीला	8. भगवंत हंस
9. गुण वैराट और	10. निन्दा स्तुति

इनमें गरुड पुराण और गुण आगम (इनकी एक प्रति उपलब्ध हुई है) के अतिरिक्त सभी रचनाओं की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों के पाठ और उनके क्रम और छन्द-संख्या में भी अन्तर पाया जाता है। हरिरस में तो ऐसे अन्तर सर्वाधिक हैं। इनकी विभिन्न परम्पराओं की प्राचीन और महत्त्वपूर्ण प्रतियों के आधार पर इनका वैज्ञानिक पद्धति से पाठ-सम्पादन करना परम आवश्यक है।

कतिपय विद्वानों ने 'सभापर्व' को ईसरदास रचित बताया है किन्तु यह उनकी रचना नहीं है।

नीचे उल्लिखित हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त प्रत्येक रचना का परिचय और विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

6

हरिरस :

ईसरदास की सर्वाधिक प्रसिद्ध और चर्चित रचना हरिरस है। राजस्थान और गुजरात में आज भी अनेक लोग इसका दैनिक पाठ करते हैं। इसका मुख्य कारण सरल राजस्थानी में इसका भक्ति और अध्यात्मपरक रचना होना है। यह लगभग 162-165 छन्दों की मुक्तक रचना हैं, जिसमें पर-ब्रह्म के निर्गुण और विशेषतः सगुण रूपावतारों का अनेकविध गुणगान और आत्मनिवेदन किया गया है। ऐसा भगवान से अटल 'प्रेमाभक्ति' और कर्मबन्धन से मुक्ति पाने के लिए किया गया है।

विषय की दृष्टि से हरिरस के छन्द दो प्रकार के हैं : एक तो वे, जिनमें भक्त कवि ने रचना के उद्देश्य तथा कर्म, जीव आदि विषयक कतिपय तात्त्विक प्रश्न उठाए हैं। ऐसे छन्दों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। दूसरे वे जो इस उद्देश्य के साधन स्वरूप हैं—अर्थात् भगवद्-गुणगान विषयक। सिद्धि-प्राप्ति, आत्मदर्शन और रहस्यानुभुति के संकेत भी कुछ छन्दों में हैं (छन्द-संख्या 154, 155, 157, 158 आदि)। शेष सारे छंद इस दूसरी कोटि के हैं। इन छंदों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें प्राय: प्रत्येक छद में तीन बाते एक साथ मिलती हैं : 1. प्रभु के अनेक नाम, 2. उसके गुण या महिमा या कार्य का उल्लेख-संकेत और 3. जिज्ञासा, आत्मनिवेदन या स्वीकारोक्ति। प्रत्येक छोटे-से छन्द में प्रकारान्तर से अत्यन्त लाघव से ये बाते कही गई हैं, जो अनुपम हैं। इस प्रकार प्रत्येक छंद में भक्ति के सभी उपादान अपने मूल रूप में ध्वनित है। भक्ति और अध्यात्म के क्षेत्र मे राजस्थानी में ऐसी कोई दूसरी रचना प्राप्त नहीं है। यही इसके महत्त्व का कारण है। इसमें हुए प्रक्षेपों का भी मूल कारण यही है।

भक्त कवि अवतारों का नामोल्लेख करते हुए आरम्भ में सिद्धान्त की बात कहता है : भक्तों के दु:ख-निवारण हेतु प्रभु अनेक रूप धारण करते हैं। उनके चरित-वर्णन और गुणगान से मनुष्य का ससार से उद्धार हो सकता है, उसको जन्म और कर्म-बन्धन से मुक्ति मिल सकती है :

(विवेचन और सभी उदाहरण उदयपुर की, सवत् 1696 की, प्रति से है)

> बळि अवतार तूझ बळि-बधण, भगत तणा धरिया दुषभंजण।
> तवइ ज हरि अवतार तुहारा, सुदि त नर छुटई संसारा ॥4
> चवतां चरित तुम्हारा चेतन, जनम न ह्वइ पुनरपि मांनव जन।
> अकल अजनमा अलष अलेप्रम, क्रम छूटिसइ तुझ कथितां क्रम ॥5

इसलिए वह प्रतिज्ञा करता है : मैं अपने कर्म-बन्धन नष्ट करने के लिए हे भगवान ! तेरे कर्मो का कथन करूँगा[1] और श्वास-श्वास में तेरा नाम स्मरण करूँगा :

> माहरा क्रम मेटिवा माहव, क्रम हूँ कथिस तुहारा केसव।
> नाम तुहारउ हूँ घणनामी, साम-सास संभारिस सामी ॥6

इस संक्षिप्त प्रतिज्ञा में उल्लिखित सभी बातों की ओर संकेत किया गया है। कहना न होगा कि इस प्रयास मे भक्त कवि पूर्णरूपेण सफल हुआ है।

---

1. प्रकारान्तर से यही बात गुण वैराट, छन्द 1 में कही गई है, जिसका उदाहरण आगे द्रष्टव्य है।

अब तात्विक प्रश्नों को लें।

आदि में समस्त जीव जब भगवान की इच्छा से ही उत्पन्न हुए तब उनके कौन से कर्म बाकी थे ? ऐसी स्थिति में उनको उत्तम, मध्यम और अधम क्यों बनाया ? क्या उनके कर्म शेष रह गए थे ? फिर, जीवों के पीछे पाप-धर्म का बखेड़ा क्यों लगाया गया ? पहले जीवों की रचना की या कर्मों की ? क्या पहले कर्म-अकर्म उत्पन्न कर उनको जीवों पर लागू किया ? जीवात्मा को बिना अपराध ही जन्म-मरण के दुखों को भुगताते हुए इधर-उधर क्यों भटकाया जा रहा है ? हे त्रिभुवनपति ! या तो तुम शास्त्र-कथन को असत्य ठहराओ (सृष्टि के आदि में एक से अनेक—एकोऽहम् बहुस्याम्—होने की इच्छा से अनेक रूपों मे आप उत्पन्न हो गए) अथवा कर्मो की प्रधानता को असत्य ठहराओ (जिसके कारण कर्मानुसार जन्म धारण करने पड़ते हैं, की धारणा है)। किन्तु अन्त में वह 'कर्मगति' के विषय में अपने प्रश्न पूछने पर स्वय को 'गँवार' बताता हुआ परमेश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के सम्मुख चुप हो जाता है क्योंकि बड़ों से विवाद कर कौन सफल हो सकता है? वह स्वीकार करता है कि अनन्त रूप परमात्मा के आदि-अन्त और कर्मो की गहन गति का पता लगाना असम्भव है :

ताहरी इच्छा दीध तइ, जई इ आदि जनंम।
तई इ हुता अम्ह तनि, केसव किसा करम ॥32
आदि तीई ही ज ऊपना, जगि जीवन सह जीव।
ऊँचा नीचा अवतरण, दीइ कांई वंस दईव ॥33
आपोपइ हुता अनँत, तई आपो अवतार।
पाप धरम की पाडिवा, लाया जीवां लार ॥34
आदि तणउ जोतां अरथ, भाजइ मुझ न भ्रंम।
पहिला जीव परठीया, किया कि पहिला क्रंम ॥36
षाणि चियारइ षोणिधर, जिणि दिन जाया जंत।
कीधा किम पाषइ करम, उत्तिम मध्य अनंत ॥38
विण अपराध विटंबतउ, रहि हिव त्रिभुवन राइ।
करि कूड़ा सासित्र क्रिसन, करि क्रम कूड़ा काइ ॥30
कीधइ कुण पहुँचइ किसन, वडां सरीसउ वाद।
आदि न को तो नां अनंत, आतम करम अनादि ॥39
क्रम गति पूछां तो कन्हां, गोव्यंद हूं गंमार।
आडि वसंतइ डेडरी, पुणइ समुद्रां पार ॥40

भक्त कवि ने इस तात्त्विक विवाद को उठाकर अपनी सहज चेतना को कुंठित नहीं होने दिया। भागवत के ग्यारहवे स्कन्ध में कर्म विषयक चर्चा है। उल्लेख्य

है कि अन्य रचनाओं में भी हरिरस के ये मूलभाव न्यूनाधिक रूप मे प्रकारान्तर से व्यक्त किए गए हैं।

हरिरस के विभिन्न संस्करण और पाठ-प्रामाणिकता :

हरिरस के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके है। इनकी छन्द सख्या और पाठ में बहुत भेद है। नीचे सपादको सहित इनका परिचय दिया जाता है :

1. श्री पींगलशी पाताभाई, भावनगर (सौराष्ट्र)। प्रथमावृत्ति—संवत् 1969, द्वितीयावृत्ति—संवत् 1980। छन्दसंख्या-195; मूल हिन्दी, टीका--गुजराती।
2. श्री शंकरदान जेठीभाई देथा चारण, लीबड़ी (सौराष्ट्र)
   दसवी आवृत्ति—संवत् 2037, छन्द-संख्या 361 (गुजराती सटीक)
3. श्री पीताम्बरजी अर्जुनजी वारडे, मिट्ठी (थरपारकर), सन् 1932; छन्द संख्या—361 (लीबड़ी संस्करण के गुजराती हरिरस का हिन्दी रूपान्तर)। प्रकाशक—सेठ मथुरादास पुरुषोत्तमदास कचरानी, मुम्बासा (अफ्रीका)
4. श्री मानदान बारहठ, ग्राम नगरी (राजस्थान) प्रथमावृत्ति—संवत् 1994; छन्द-सख्या—361
5. श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य, प्रकाशक—राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, सन् 1938। छन्दसंख्या—361 (हिन्दी)
   इसमें चार हस्तलिखित प्रतियों (संवत् 1896, 1932, 1959, 1960 मे लिपिबद्ध) का उल्लेख है किन्तु संवत् 1896 की 'पुस्तक को मुख्य मानकर इसके आधार पर हरिरस काव्य का सम्पादन किया गया है' (प्रस्तावना, पृष्ठ 4)। अन्य किसी भी प्रति के पाठान्तर नहीं है।
6. श्री बदरीप्रसाद साकरिया, प्रकाशक—श्री सादूळ राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, सन् 1960। छन्दसंख्या—361 (हिन्दी)
   'कुछ प्रतियों का परिचय' के अन्तर्गत सम्पादक ने 16 हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख किया है, जिनमें संवत् 1717 की लिपिबद्ध प्रति 'सम्पादन की मुख्य प्रति' है। परिशिष्ट 3 में 'हरिरस की कतिपय प्रतियों के विशिष्ट पाठान्तर और कुछ प्रक्षिप्त पाठ' दिए है। इनमें यह नहीं बताया गया है कि कौन-सा पाठान्तर और प्रक्षिप्त पाठ किस प्रति का है और न ही प्रक्षिप्त माने जाने का कारण बताया है। वस्तुत: सम्पादक ने तथाकथित 'मुख्य प्रति' का पाठ, और वह भी अपनी इच्छानुसार, ग्रहण कर लिया है। वह एक दोहे के आधार पर यह मान कर चला है कि हरिरस की कुल छन्दसंख्या 360 है। इसलिए इतने छन्दों वाली प्रति ही उसके लिए

पूर्ण और मूल पाठ वाली प्रति है। चूंकि उसकी 'आधार' या मुख्य प्रति में अनेक शब्दों और कारक-विभक्तियों के मालाणी रूप मिलते हैं, इसलिए हरिरस की भाषा पर येन-केन-प्रकारेण ऐसे प्रभाव का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास भी वह करता है। यह सारा प्रयास नितान्त अनुचित है क्योंकि हरिरस की भाषा, ईसरदास की शेष राजस्थानी रचनाओं की भाषा से किंचित् भी भिन्न नहीं है। दूसरे, यह 'मुख्य प्रति' एक पाठ-परम्परा की प्रति है, जिसमें अनेक प्रक्षेप और पाठ-भेद हैं। आगे इसकी चर्चा की गई है।

7. श्री हरसुर भाई गढवी, प्रकाशक—ईसरदासजी डिंगळी (चारणी) साहित्य प्रसार अने प्रकाशन ट्रस्ट, मेंसाण (जूनागढ़), सन् 1981; छन्दसंख्या-360 (गुजराती)।
सम्पादक ने मात्र एक प्रति के आधार पर पाठ दिया है क्योंकि उसके अनुसार इस प्रति में पूरे 360 छंद हैं और जिसका पाठ मूल कृति का निकटतम पाठ है (सम्पादकीय, पृष्ठ 17)। इस 'आधार प्रति' में हरिरस का लेखन संवत् 1815 की भादवा सुदि 6 शुक्रवार को पूरा किया गया है (पृष्ठ 185)। इसमें भी संपादक श्री बार्हस्पत्य और श्री साकरिया की भाँति हरिरस की मूल छन्द-संख्या 360 मानकर चला है। यह भी उल्लेख्य है कि इसके 25 छन्द (संख्या—39, 72, 73, 105, 109, 110, 136, 139, 140, 194, 242, 243, 264, 287, 328, 330, तथा 332 से 340) बीकानेर संस्करण में नहीं हैं। प्रक्षेप का अनुमान इससे लगाया जा सकता है।

वस्तुत: यहाँ भी सारी समस्या पाठ-सम्पादन से सम्बन्धित है। अन्तिम तीनों संस्करणों के सम्पादक (सर्वश्री बार्हस्पत्य, साकरिया और गढवो) पूर्वग्रह से ग्रसित हैं क्योंकि वे मानकर चले हैं (1) कि मूल हरिरस की कुल छन्द-संख्या 360 हैं, (2) कि इतने छन्दों वाली प्रति का पाठ ही मूल का या मूल के निकट का पाठ है तथा यह (3) कि इससे कम छन्द-संख्या वाली प्रति अपूर्ण है। उन्होंने यह जाँचने की कोई चेष्टा नहीं की कि इसकी छन्द-संख्या 360 बतानेवाला छन्द इस कवि द्वारा रचित है अथवा किसी अन्य द्वारा। दूसरे, उन्होंने संपादन की कोई भी तर्कसंगत प्रक्रिया नहीं अपनाई है। विभिन्न प्रतियों के पाठों का साम्य-वैषम्य और प्रतिलिपि-सम्बन्ध, उनकी पाठ-परम्परा, उनके संगत पाठ, उनकी विश्वसनीयता आदि का कोई भी सन्धान और विवेचन नहीं किया है जिसके बिना, मूल का या मूल के निकट का पाठ दिया जाना सम्भव नहीं है। तीसरे, क्षेत्र-विशेष में उपलब्ध प्रतियों के अतिरिक्त उन्होंने प्राचीन, विश्वसनीय और भिन्न परम्पराओं की और प्रतियाँ खोजने और उनके पाठों की जाँच करने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया।

चौथे, हरिरस के 'सम्पादन' (?) में उन्होंने ईसरदास की अन्य रचनाओं को बिल्कुल ही ध्यान में नही रखा जो नितान्त आवश्यक था। यदि वे उनकी अन्य रचनाओं को सरसरी तौर पर भी देखते, तो इसके पाठ, छन्द-संख्या और भाषा-शैली विषयक कुछ भ्रान्तियों से बच सकते थे।

जिस छन्द के आधार पर हरिरस की संख्या 360 मानी गई है, वह यह है :

ईसर ओ हरिरस कियो, दुहा तीन सौ साठ।
महापापी प्रामै मुकत, जो कीजै नित पाठ ।।361

(—पृष्ठ 124, कलकत्ता)

प्रकारान्तर से यही छन्द लींबडी और बीकानेर संस्करणों मे है, किन्तु उनमें 'दुहा' के स्थान पर 'छन्द' पाठ है जो कदाचित् यह सोचकर लिखा गया है कि रचना में केवल 'दूहा' नहीं और भी छन्द हैं। संगति जो बैठानी है ! ध्यातव्य है कि ईसरदास ने अपनी किसी रचना में छन्द-संख्या सूचक कोई छन्द नहीं लिखा है। यह छन्द परवर्ती क्षेपक है। इसके कारण हैं :

विभिन्न ग्रन्थागारों और व्यक्तिगत संग्रहों में हरिरस की शताधिक प्रतियाँ मिलती हैं। इसकी अद्यावधि प्राप्त प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति उदयपुर की है, जो ईसरदास के स्वर्गवास के 21 साल पश्चात्—संवत् 1696 के माघ सुदि 8 को लिपिबद्ध की गई थी। इसकी कुल छन्द-संख्या 162 है, जिसमें छन्द-संख्या 52 से 67 तक का और छन्द 68 का अधिकांश अंश नहीं लिखा गया है; इनके लिए पत्र रिक्त छोड़ा गया है। प्रतीत होता है कि जिस प्रति से यह प्रतिलिपि की गई, उसमें या तो ये छन्द अप्राप्य थे अथवा अपाठ्य थे। प्रति के अन्त में 'इति श्री हरिरस संपूर्ण समाप्त' लिखा होने से रचना के पूर्ण होने का प्रमाण मिलता है। इसमें उल्लिखित छन्द-संख्या सूचक छन्द नहीं है। हरिरस की इस प्रति के पत्र-संख्या 71 पर अन्तिम पुष्पिका-लेख इस प्रकार है :—'इति श्री हरिरस संपूर्ण समाप्त सं (व) त 16 अषाढादि 96 वर्षे माघ सुदि 8 भूमे ।। श्री महाराजाधिराज महाराजि श्री सत्रसालजी चिरजीवी पठनार्थं वणारसि तिलिकचंद लिषतं ।। सुभस्थान श्री थांणोर ! नगर मध्ये। श्री सुभभवतु ।। श्रेय:'

इसमें 'महाराजाधिराज महाराजि' तक का अंश तो स्पष्ट पढ़ा जाता है किन्तु इसके आगे के अंश पर स्याही फिरा कर उसे लुप्त करने का प्रयास किया गया लगता है। फिर भी कोशिश करने पर जो पाठ उभर कर आता है, वह ऊपर दिया गया है। इसमें 'इति श्री' से 'अषाढादि' पर्यन्त लेख लाल स्याही में, '96 वर्षे' से 'महाराजि' पर्यन्त काली स्याही में, 'श्री सत्रसालजी' से 'वणारसि ति' पर्यन्त लाल स्याही में, 'लिकचंद' से 'मध्ये' पर्यन्त काली स्याही में तथा

शेष अंश लाल स्याही में लिखा गया है।

कलकत्ता की संवत् 1792 में लिपिबद्ध हस्तलिखित प्रति में ईसरदास की प्रायः सभी भक्तिपरक रचनाएँ लिपिबद्ध है। इनमें दो के अतिरिक्त, हरिरस समेत सभी रचनाएँ ईसरदास को अपना भावगुरु या मानसगुरु मानने वाले भक्त कवि लालस पीरदान के हाथ की लिखी हुई हैं और इस कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रति के जीर्ण-शीर्ण और कीटभक्षित होने के कारण अनेक स्थलों का पाठ (और हाशियों में दिया गया पाठ भी) प्रायः अपाठ्य है। हाशियों के एकाध छन्द छोड़ दें, तो इसकी छन्द संख्या 186 ठहरती है और इसमें भी छन्द-संख्या द्योतक कोई छन्द नहीं है। यह भी हरिरस के पूर्ण पाठ की प्रति है—'इति श्री हररस सपूर्ण'। उदयपुर वाली प्रति की तुलना में इसमें 24 छन्द अधिक हैं, पाठ-भेद और पंक्तियों में व्यतिक्रम भी है, किन्तु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें उसके सभी छन्द उपलब्ध हैं।

उदयपुर वाली प्रति के पाठ को छपे संस्करणों के पाठों से मिलान करने पर कई विशेष बातें सामने आती हैं :

1. इस प्रति के 16 छन्द, संख्या—23, 28, 52, 85, 90, 97, 102, 107, 110, 112, 113, 115, 122, 124, 142, और 143—बीकानेर संस्करण में नहीं पाए जाते। इससे ज्ञात होता है कि अल्पकालान्तर में हरिरस के पाठ की कई परम्पराएँ विकसित हो चुकी थीं, जिनमें कतिपय में कुछ मूल छन्द भी सम्भवतः विस्मृत हो गए थे।
2. दूसरी ओर, छपे संस्करणों में किंचित् पाठान्तर से अनेक ऐसे छन्दों का समावेश है, जो ईसरदास की अन्य रचनाओं के है, हरिरस के नहीं। ऐसे छन्दों की संख्या लगभग एक दर्जन है। उदाहरणार्थ ये छन्द द्रष्टव्य है :

    1. कलप वेद सासत्र कथै, सिद्ध साधिक सहि कोय।
    अन विण त्रिपति न ऊपजै, हरि विण मुगति न होय ।।18

    2. नमो नाग नीमवण, नमो नर सुर नीपावण।
    नमो गोवरधन उधरण, नमो थंभा विण थंभण।
    नमो वेद व्याकरण, नमो निसहर नीजामण।
    नमो भुयण भोगवण, नमो हवि कवि हुतासण।
    ईसरो कहै असरण सरण, वहण कंस सांभळि वयण।
    जग जाड जीव जामंण मरण, छोड छोड जग छोडवण ।।

(—अन्तिम छन्द)

दोनों छन्द 'रास कीला' के हैं (उदयपुर और कलकत्ता की प्रतियाँ)। दूसरा छन्द जयपुर की प्रति में 'निन्दा स्तुति' का अन्तिम छन्द माना गया है। इनकी स्थिति विभिन्न संस्करणों में क्रमशः इस प्रकार है :

	मेसाण	भावनगर	लींबड़ी	कलकत्ता	बीकानेर
(1)	74	×	80	×	133
(2)	343	189	355	342	124

3. लागूं हूं पहिलां लुळे, पीतंबर गुर पाइ।
मेद महारस भागवंत, पाम्यौ जास पसाइ ॥7
4. जाड़ टळै मन क्रम जळै, निरमळ थायै देह।
भाग हुवै तो भागवंत, सांभळिजै श्रवणेह ॥8
5. भगत वछल मो दे भगति, भांजि परौ हिव भ्रम।
मूझ तणा क्रम मेटिवा कथूं तुहारा क्रम ॥9
6. पीठ धरणिधर पाटिली, हरि थिया चित्रणहार।
तोई तोरा चरितां तणां, परम न लाभै पार ॥10
7. तोरा हू पूरा तवे, सकू केम समराथ।
चत्रभुज सहि थारा चरिति, निगम न जांणै नाथ ॥11
8. कथां केम ईसर कहै, षांणि सकल ग्रिथि षेत।
वयण न श्रवण न मन वसि, नितु अगोचर नेत ॥12
9. देव किसी ओपम दिआं, तै सरजे सोह कोइ।
तो सारिषौ तुही ज तूं, अवर न दूजो कोइ ॥14
10. नमो वासदेव परम गुर, परम आतम परमेसर।
निरालंब निरलेप, जगत जीवन जोगेसर।
अषिळ ईस अपार, अनंत ओलषि अविणासी।
थावर जंगम थूळ, अनै सौषम निवासी।
दारद पाप दाळद दहण, पारस संगम लोह परि।
निज नाम नमो तू नारियंण, हंसराज सिरताज हरि ॥

ये छन्द '**गुण बैराट**' नामक रचना के हैं। इसमें छः छन्द (3 से 8) तो जयपुर और कलकत्ता—दोनों की हस्तलिखित प्रतियों में मिलते हैं; दसवाँ छन्द कलकत्ता की प्रति में है।

हरिरस के विभिन्न संस्करणों में इनकी स्थिति क्रमशः इस प्रकार है :

	मेसाण	भावनगर	लींबड़ी	कलकत्ता	बीकानेर
(3)	2	1	8	6	3
(4)	3	2	9	7	352
(5)	5	3	10	8	4
(6)	8	4	11	9	5
(7)	7	5	12	10	6
(8)	9	6	13	11	7

(9)	10	7	14	12	8
(10)	348	×	344	344	222

11. आदि पुरष आदेस मात विण तात उपन्नो।
घात जत घनवांन आपई आप उपन्नो।
रूप रंग विण रेष ध्यान जोगेसर ध्यावै।
अमर कोडि तेतीस प्रभू चो पार न पावै।
अवतार उभै कीय सिव सगत अलष निरंजण आप हुव।
घण घणा घाट भांडण घड़ण आदि पुरष आदेस तुव।।

यह कलकत्ता की प्रति में **'निंदा स्तुति'** का अन्तिम छन्द है, जो विभिन्न संस्करणों में इस प्रकार है :

भेंसाण	भावनगर	लींबड़ी	कलकत्ता	बीकानेर
341	187	336	339	185

इस विवेचन से हरिरस के बारे में तीन बातें स्पष्ट हैं :

1. विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में इसकी कई पाठ-परम्पराएँ प्रचलित हो गई थीं, जिनमें कुछ में मूल रचना के अनेक छन्द नहीं आ पाए थे।
2. कवि की अन्य रचनाओं के अनेक छन्द भी, जो विषय, भाव और शैली से इसके छन्दों से मिलते-जुलते हैं, इसमें सम्मिलित किए जाने लगे थे।
3. प्रसिद्धि, प्रचलन और गुणवत्ता के कारण प्रक्षेप-प्रक्रिया शीघ्रता से आरम्भ हुई।

निष्कर्षतः ये छपे हुए संस्करण हरिरस का आंशिक पाठ ही देते हैं। इनमें जहाँ एक ओर मूल रचना के अनेक छन्द नहीं हैं, वहाँ दूसरी ओर प्रक्षेपांश भी बहुत हैं।

हरिरस के कई संस्करणों (बीकानेर, नगरी) में सप्तश्लोकी गीता की भाँति सप्तपदी हरिरस, जिसे 'छोटा हरिरस' कहते हैं, भी किंचित् पाठ-भेद से मिलता है। किन्तु अभी तक पृथक् रूप से इसकी कोई प्रामाणिक प्रति प्राप्त नहीं हुई है। यह हरिरस की महत्ता-द्योतन का लोकप्रयास है।

7

2. गुण रास कीला :

इसकी दो प्रतियाँ प्राप्त हैं(कलकत्ता और उदयपुर की; यहाँ मुख्यतः कलकत्ता की प्रति के आधार पर विवेचन किया गया है।) यह दोहा (20),'रंगीक' (?) (219)और छप्पय (1) (कलकत्ता-प्रति में छप्पय और है) —कुल लगभग 240

छन्दों की रचना है। 'रंगीक' (?) छन्दों में प्रत्येक के अन्त में 'निमो' (नमो) शब्द आता है। यद्यपि 'रंगीक' नामक छन्द राजस्थानी छन्दग्रन्थों में नहीं मिलता, तथापि इसके लक्षण 'हरिप्रिया' (अपर नाम—'चंचरी') नामक 46 मात्राओं के छन्द से मिलते हैं (जगन्नाथप्रसाद 'भानु', छन्द:प्रभाकर, पृष्ठ 78, सन् 1926)। लोक में 'रंग देना', प्रशस्ति या सराहना करने अथवा यश-गान के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसलिए हरिगुणगान के संदर्भ में 'रंगीक' छन्द की सार्थकता भी सिद्ध होती है। नाम से विदित होता है कि यह श्री कृष्ण की रास-क्रीड़ा से सम्बन्धित रचना है किन्तु इसमें इसके अतिरिक्त अन्य अवतार-चरित और भगवद्महिमा भी वर्णित है। कवि इसका कारण स्पष्ट करता है : निर्गुण से सगुण होता है; सगुण निर्गुण नहीं हो सकता। किन्तु निर्गुण अलख, अगोचर और अगम्य है, वह ज्ञान और ध्यान से पकड़ में नहीं आता, इसलिए कवि हरि के विभिन्न अवतारों का गुणगान करता है :

निगुणां सगुण पटंतरो, मुझ परि छवि माइ।
निगुणां सा सगुणां हुअै, सगुणां निगुण न थाइ ॥3
× × ×
अलष अगोचर अगम गम, ग्यांन न ध्यान ग्रहाइ ॥4
रूप जिकै हरि तूं रमै, इलि ले ले अवतार।
संत चरित तेता सहिति, अति दिन थिअै आधार ॥6

दूसरे, इसलिए भी कि बिना हरिगुणगान के मुक्ति सम्भव नहीं है (छन्द 18, पीछे उद्धृत है)।

श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाओं और रासक्रीड़ा का वर्णन किंचित् विस्तार से किया गया है। लीलाओं में—कालिय-दमन, पूतनावध, कंस-वध, धेनु-चारण, गोवर्द्धन-धारण, द्रौपदी का चीर बढ़ाना, पाण्डवों की सहायता, जरासंध-वध, शिशुपाल-वध, रुक्मिणी-हरण आदि प्रसंगों का उल्लेख-वर्णन है। कालिय-दमन विषयक कतिपय छन्द द्रष्टव्य हैं :

चडियो कोलंब डाळि, झांप केरी विष झाळि।
कारणि व्रिज क्रिपाळि, कीलां करणां निमो ॥41
पैसियो मांहि पयाळ, जागवियौ जमजाळ।
काळीनाग वडौ काळ, चापि कसणां निमो ॥42
ऊठियौ फंण ऊपाडि, चष बे सहसि चाडि।
सहसि जाड ऊघाडि, डाकिणी डसणा निमो ॥43
फेरियौ सहिसफण, आगली नंद आंगिणि।
जोअत जगत जीण, गंद्रप गुणां निमो ॥50

रास-क्रीड़ा का वर्णन तो रस लेकर किया है। वेणु की मधुर ध्वनि पशु-पक्षी, वृक्ष, नदी, देव आदि सभी को मोहित कर लेती है। रास-क्रीडा और नृत्य का मनोहारी दृश्य उपस्थित किया गया है जिसमें गोपियों की नृत्य-गति और स्थिति द्रष्टव्य है। ध्वन्यात्मक शब्द-चयन से सारा वातावरण मानों सजीव हो उठा हो :

फरकि नरकि फरि फररि फिरंति फरि।
हरणाषी भीड हरि ग्रांह भमणां निमो ।।141

घाघरि गोपि घररि थागड़दा पग थररि।
झागड़दा झुणि झांझरि वाजि झणणा निमो ।।142

गिड़गिडदा गाजि गयंण, नाचती म्रिग नयण।
छ्रणंकि चूड़ि छंणिण, क्रीणंति क्रीणां निमो ।।143

किडकिड़दा कांकण करि, गौलणी रमी गजरि।
वळि वळि नागवळि, वलकि वैणां निमो ।।144

हींडुले रतन हारि, झाडै लोलि झाटूकारि।
व्रसनावै वारि वारि, ससि वयणां निमो ।।145

पांणे पांण पाए पाव, अहिरि अहिरे ठाहि (वाहि)।
लोचन लोचंने लाइ, श्रव लषणां निमो ।।146

कवि ने राम, नृसिह और कल्कि अवतार का उल्लेख किया है तथा रास-क्रीड़ा सुनने की फलश्रुति भी बताई है :

रासकीला जिकै सुणौ, भागवंत वेद भंणौ।
तन वसै तीह तणौ, देवकी तणां निमो ।।85

8

3. गुरड़प्रांणि (गरुड़ पुराण) :

कलकत्ता की प्रति में यह रचना 78½ चौपइयों में लिपिबद्ध है। नाम साम्य से आभास होता है कि यह कृति सुप्रसिद्ध गरुड़पुराण का या तो संक्षिप्त रूप होगी अथवा उसके आधार पर रची गई होगी, किन्तु यह आंशिक रूप में ही सत्य है। हिन्दुओं में गरुड़पुराण का श्रवण श्राद्ध कर्म का एक अग माना जाता है। इसमें प्रेतकर्म, प्रेतश्राद्ध, यमलोक, यम-यातना, नरक आदि विशेष रून से वर्णित हैं। प्रस्तुत रचना के आरम्भिक 18 छन्दों में तो यमपुरऔर

उसमें कर्मानुसार फलप्राप्ति का वर्णन है[1], किन्तु बाद के सभी छन्दों में पूर्ण-ब्रह्म का गुणगान और उसकी सर्वशक्तिमत्ता का उल्लेख है। चराचर सृष्टि उसी की निर्मिति है, वही कर्ता-धर्ता और अन्यथाकर्ता है। यहाँ भी कवि अपने विश्वास को दोहराता है कि भगवद्गुणगान से वैकुण्ठ-प्राप्ति होती है। असमर्थ होते हुए भी वह ऐसा करता है और इसलिए लक्ष्मीपति से कर्मबन्धन से छुटकारे की प्रार्थना करता है, क्योंकि उसे उसी का भरोसा है :

ध्यायै तूनां ध्यांन धरेह, आपिणि करता आपिणि देह।
भंणै ईसरो लाछि-भतार, क्रम-बंधण छोडवि करतार।
जाणां हूं कि तूं घंणजांण, थारा वेद न सकिया करै वषांण ।।78
अम्हचै त्रिसंन तंम्हची आस, आदि पुरिषि जुग जुग अविणास ।।
(—अंतिम पंक्ति)

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कवि ने सगुण-निर्गुण, हिन्दू-मुस्लिम-धर्म, मक्का-मदीना और गया-प्रयाग; क़ुरान-पुराण, अभिवादन-प्रणाली, विभिन्न साधनाओं तथा दर्शनों की मूलभूत एकता और समन्वय का सन्देश दिया है :

तूं निगरब निलोभ निरास, अजपा जाप सास ओसास।
मूळ गावतरी तारग मंत्र, कुलबा कुतबा तोरा तंत ।।48
सलांम अलेप अलेप सलाम, राम लषमणां सांळिगरांम।
मका मदीना काबिलि हज, गया प्रियाग जगत एक ज ।।49
तू पूजियो कुराणि पुराण, पारब्रह्म छ दरिसण प्राण।
त्रनयण त्रिसकति त्रिगुण त्रिकाळ, तू गुरु गोरष लाल गुआळ ।।50

9

4. **देवियाण** :[2]

(अपर नाम—देव्यायण, देवीयाइण, देवीदीवाण) कलकत्ता की दोनों प्रतियों के और इस संस्करण के पाठों में पर्याप्त भेद है। (यहाँ इस संस्करण के आधार पर विवेचन किया गया है जिसमें, 85 छन्द 'अडल' और 'भुजंगी' तथा अन्त में

---

1. दो छन्द इस प्रकार हैं :

के भुविया त्रिहिया करै वैपाम, के उघाडा फिरै निगम।
के उरिवाणा पगे बळै, काही माथै चंमर ढुळै ।।13
के सूता सोव्र नर्मी सेज, काही पगै धातै वेज।
काही माथै पड़ै पहार, के भोगवै लील अपार ।।14

2. संपादक-प्रकाशक—श्री शकरदान जेठीभाई देथा चारण, लीबड़ी, दूसरी आवृत्ति, 1960 ई०. मूल-पाठ गुजराती और हिन्दी में, टीका—गुजराती मे।

3 छप्पय हैं) । इसमें महाशक्ति देवी की सर्वशक्तिमत्ता और महिमा का बखान किया गया है। वह अनेक नाम-रूपों में प्रकट होती है; सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली है। वह समग्र कार्यों के मूल में है और आद्या शक्ति है । कर्ता, कर्म और कारण; ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान; शक्ति, शिव और सिद्धि; ब्रह्मा, विष्णु और शिव—सब वही है । वह धूम्रलोचन, रक्तबीज, शुंभ, निशुंभ का वध करने वाली है। नाम-रूपात्मक सृष्टि में शक्ति के अनन्तर कुछ नहीं है । देवी-देवताओं, नदी-तीर्थ आदि सभी में उसका निवास है । एक प्रकार से कवि ने देवी को सम्बोधित कर उसकी विविध प्रकार से स्तुति की है । उदाहरणार्थ ये छन्द द्रष्टव्य हैं :

देवी रुकमणी रूप तू कान सोहे, देवी कान रै रूप तूं गोपि मोहे।
देवी सीत रै रूप तूं राम साथे, देवी राम रै रूप तूं भगत हाथे ।।60
देवी जोग रै रूप गोरक्ख जागे, देवी गोरख रूप माया न लागे ।
देवी माइया रूप तैं विष्णु बांधा, देवी विष्णु रै रूप तूं दैत खाधा ।।62
देवी दधीचि रूप तैं हाड दीधो, देवी हाड रो तक्ख थैं वज्र कीधो ।
देवी वज्र रै रूप तैं व्रत्र नाश्यो, देवी व्रत्र रै रूप तै शक्र त्राइयो।।73
देवी नारदं रूप तैं प्रश्न नाख्या, देवी हंस रै रूप तत ज्ञान भाख्या।
देवी ज्ञान रै रूप तूं गहन गीता, देवी कृष्ण रै रूप गीता कथीता ।।74

उल्लेख्य है कि कवि ने गोरख का उल्लेख प्रायः सभी बड़ी रचनाओं में किया है।

10

5. **गुण आपण :**

(कलकत्ता की प्रति में इसका पूरा पाठ नहीं है । यहाँ उदयपुर की प्रति के आधार पर विवेचन किया गया है) । इसमें एक परब्रह्म परमसत्ता परमेश्वर की सर्वव्यापकता का अनेकविध वर्णन किया गया है । नाना नाम-रूपों में अभिव्यक्त सृष्टि के सभी पदार्थों, जीवों, गुण-धर्मों, व्यापारों और कर्ता, क्रिया, कर्म आदि में वही एक है । सृष्टि का समग्र कार्य-व्यापार उसी का स्वरूप है। प्रथम दोहे में मूलभाव संकेतित है :

तू तारिनि तू तिरि, तू षाटि तू षाइ ।
ईसर सामी एक तू, अलष निरंजंण नाइ ।।

यह परमेश्वर किन रूपों में है, इसकी बानगी इन छन्दों में मिलती है :

आपण पाणी आपण मछ, आपण गाइ आपण वछ।
आपण करसण आपण हाळी, आपण वाड़ी आपण माळी ।

आपण षुधा आपण अंन, आपण वासदे आपण वंन।
आपण उदास आप घरबारी, आपण हळयौ आपण भारी ।
आपण हिंदू आप मुसलू, आपण गूंगो आप गहिलू।
आपण जोगी आप संन्यासी, आपण भगत नि आप उदासी।
आपण देउल आपण जाती, आपण मूरति आपण पाती ।
आपण रांमण आपण रांम, आप आपसूं किया संग्राम ।
आपण अंबर आपण धरती, आपण महेस आप पारबती ।
आपण कंन्हड़ आपण कंसु, एक निरंतर हंसो हसु।
रूड़ो बुरो रूपक रूप, सारो आदि पुरुष सरूप।
ईसरा सामी आपो आप, वासुदेव सब भूत वियाप ।।

11

6· **गुण आगम :**

(कलकत्ता की प्रति के आधार पर)। इसमें भविष्य में होने वाले कल्कि अवतार का वर्णन है। भगवान प्रजा-पालन, वेद, धर्म की रक्षा और साधु-पुरुषों के उद्धार के लिए कल्कि रूप में अवतरित होंगे और 'किलंग' का वध करेंगे। उनके साथ सभी देवता, पाँचों पाण्डव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, अंगद, सिद्ध, नौ नाथसहित हुसैन और उनके अनुयायी आदि-आदि भी होंगे। वे दुनिया पर दया करेंगे, मेघकन्या—वसुधा से विवाह करेंगे, दुष्टों का दमन कर 'निकळंक नाथ' कहलाएँगे तथा पुनः सत्ययुग का आरम्भ करेंगे।

इसमें कवि ने प्रकारान्तर से मानव-मानव की—तत्रापि हिन्दू-मुस्लिम की एकता, कर्मफल की अनिवार्यता और दीनदयालु, जन-रक्षक, दुष्ट-संहारक प्रभु के एक भावी अवतार का वर्णन कर लोक को आश्वस्त किया है। कतिपय छन्द इस प्रकार हैं :

पांचइ पांडव षड़ा पासे षड़े षंड षुरसांण।
मिलि सतरि सहस हुसैनीयां बलिवंत जोध जुआंण।

× × ×

जुजुठिळ सहदे निकुळ जानी भगत अरिजंण भीम ।
इंबरीक रुषमांगद अहिबळ रमे साथि रहीम ।

× × ×

तो कहा विसै तिणि दीह काइमि नांय निकळंक नांम ।
जो आविसै तिणि दीह जीवां कूड़ा साचा कांम ।

× × ×

माहव मांही मेघमंडळि आविसै एकार।
बाणियां बांभण कांबि वहिसै हुइसैं एकूंकार।

अब कल्कि के भावी युद्ध विषयक ये पंक्तियाँ देखें :

ढगढगे ढोल अयास धूजे ढळकिसै गज ढाळ।
घर होइ धके धोम धुंअरि विचि दळां वरजागि।
अनंड़े अनंड़ भड़ां सां भड़ लोह लोहे लागि।
मिलि चक्र चक्रे मेह मेहे, बांण बांणे बुह।
हलहल होहुंकार हुसी, हुए एहै मै दुह।

12

7. **बाल लीला** : (कन्हैया चरित्र, क्रस्न ध्यान)

(यहाँ श्री रावल सारस्वत, जयपुर की प्रति के आधार पर विवेचन किया गया है। विभिन्न प्रतियों में छन्दसंख्या 21 से 24 तक है)। इस रचना के उल्लिखित कई नाम दिए गए है। हरिरस के भावनगर संस्करण में इसके अन्तिम 11 छन्दों को 'दाण लीला' के नाम से छापा गया है और कुछ विद्वानों ने भ्रमवश इसको बाललीला से पृथक् रचना भी मान लिया है। इसमें दो विषयों का वर्णन है : आरम्भिक 10 छन्दों में बालकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का और शेष में वन-बिहार के दो प्रसंगों—दधि-दान और गायें चराने—का। यह रचना भी श्रद्धालुओं में बहुत प्रचलित है।

बाललीला का अत्यन्त स्वाभाविक और भावसौन्दर्य-मण्डित हृदयग्राही वर्णन किया गया है। उदाहरण देखें :

मोहन कवल दध को लेत, ग्वालनि जात गुलचा देत।
ग्वालनि बडी उनकै मांहि, दे दे नैन सैन हसाहि।
संकर चत्रमुष सुरराज, मुष सूं कहत धनि महाराज।
होम्यूं जगि को नही लेत, इनकी छाछ सूं यह हेत।

× × ×

बैठे माता गोदी आन, झारत गऊ रज अचरांन।
फैंकट करत फनगट फेरि, लकुटि अवनि ऊपरि गेरि।
छल करि काढते ये छिद्र, भया धीठ है बलिभद्र।
हमकूं छाडि बन कूं जात, बन के जीव मोहि डरात।
यतनी सुनत जसुमति माय, लालन लियो उर लपटाय।
अैसे दरस परि लष वेर, ईसर वारि डार्यो फेरि॥

13

8. भगवंत हंस :

(इसकी तीन प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं; यहाँ उदयपुर की प्रति के आधार पर विवेचन किया गया है)। यह 49/50 छन्दों की रचना है। इसमें एक दोहे के अतिरिक्त सब 'पाधरी' छन्द हैं, जिनमे प्रत्येक की आरम्भिक पंक्ति के आदि में 'भगवंत हंस' शब्दों का प्रयोग है। इसमें भगवंत अर्थात् भगवान और हंस अर्थात् आत्मा—दोनों को एक मानकर देह-मंदिर में ही उस परमदेव को प्राप्त करने का उल्लेख है :

विद्या ब्रह्मंड नवइ षंड, देहा देवल देव।
देहा मंझि भगवंत वसइ, सको करो तस सेव ॥

स्पष्ट है कि इसका कथ्य ईसरदास की अन्य रचनाओं से किंचित् भिन्न है किन्तु समग्रता में उनके भक्ति-संदेश का पूरक है। इसमें कथित कतिपय महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख आवश्यक है।

—भगवंत हंस को भीतर ही खोजना चाहिए किन्तु बिना 'करतूत' के कार्य सिद्ध नहीं होता। भीतर ही उसकी पूजा करनी चाहिए :

भगवत हस मांहे ज जोय, करतूत विगर सिध नहीं कोय ॥32

× × ×

भगवंत हंस माहे ज बूझि, भगवंत हंस मांहे ज पूजि ॥15

—निर्जीव (पत्थर आदि) की पूजा को त्याग कर सजीव (जीव मात्र) की पूजा करनी चाहिए; उसके प्रति विनम्र होना चाहिए तथा मन-वचन शुद्ध करके उसका (भगवंत का) नाम लेना चाहिए।

भगवंत हंस मांहे ज खूजि, निरजीव छंडि सजीव पूजि।
भगवंत हस सौं करि प्रणांम, मन वाच काय सुध लेय नाम ॥36

—भगवंत हंस की प्राप्ति का मूल तत्त्व प्रेम है। जिसने उसको जान लिया वह संसार-मात्र से प्रेम करता है :

भगवंत हंस जाणियौ जेह, ससार तणौ पाळै सनेह ॥38

—निशिदिन राम का जप करने से, उसका स्मरण करने से, भगवंत हंस का ज्ञान स्वतः ही हो जाएगा और जिसने यह जान लिया उसके लिए वेद-कतेब भिन्न नही है :

भगवंत हंस ओळषे आप जप समरि निसदिन रांम जाप ॥41
भगवंत हंस प्रामसी भेद विलगसी नहीं कतेब वेद ॥42

—छल-द्रोह छोड़कर भगवंत हंस से लौ लगाने और प्रेम करने से, संसार की विषय-वासनाएँ और जाल नष्ट हो जाते हैं :

भगवंत हंस सौं लिव लाय, जगजाळ विषै जिम विलै जाय ।
भगवंत हंस सौं प्रीत मंडि, संसार तणा छल द्रोह छंडि ।।5

इसी संदर्भ में कवि ने आत्मा के स्वरूप, पंच तन्मात्राओं, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि का नामोल्लेख भी किया है। भक्त उस 'भगवंत हंस'—गोविन्द की शरण में है। उसका अटूट विश्वास है कि वह उसके पाप नष्ट करेगा :

भगवंत हंस मांहे ज भेंटि, माहरा पाप गोविंद मेटि ।
भगवंत हंस वेसास तास, ईसरो सरणि तो अविणास ।।49

14

9. **गुण वैराट :**

(इसकी दो प्रतियाँ प्राप्त है। कलकत्ता की प्रति में अन्त में एक छप्पय और है) । यह 15 दोहों और 224/225 भुजंगी—लगभग 240 छन्दों की रचना है । आरम्भ के कतिपय भुजंगी छन्दों में प्रत्येक में 'तई एक तू एक' तथा शेष लगभग 200 छन्दों की प्रत्येक अर्द्धाली के आरम्भ में (अर्थात् एक छन्द में चार बार) 'नमो' शब्द की पुनरावृत्ति हुई है । इसके आरम्भ में ईसरदास ने दो महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है : एक तो अपने गुरु पीताम्बर (भट्ट) का और दूसरे, अपने आधार-ग्रन्थ—श्रीमद्भागवत का (सम्बन्धित छन्द हरिरस के प्रसंग में देखें) । इन गुरु की कृपा से उनको भागवत के 'महारस' का रहस्य प्राप्त हुआ, भागवत—जिसके श्रवण से मन की अज्ञानता और कर्म नष्ट हो जाते हैं । वेदव्यास का उल्लेख भी भागवत को संकेतित करता है :

वेदव्यास वरनवां, निमो गुणपति नाथ ।
चरणाइंदि नारद व्रहंम, हरिहर जोड़े हाथ ।।6 (कलकत्ता-प्रति)

यह ईसरदास की रचनाओं को समग्रता में समझने का मूल सूत्र है । रूप, रेखा, वर्ण, तन आदि रहित निर्गुण ब्रह्म का गुणगान कठिन है। प्रसन्न होकर माँ शारदा की दी हुई सुमति के कारण कवि अपनी बुद्धि के अनुसार विष्णु का वर्णन करने का संकल्प करता है :

रूप न रेष न वरण वप, ईषां किसै उवेवि ।
गुण निरगुण रा गावंतां, दोरो तो विण देवि ।।4
सारदा दीन्हीं सुमति, प्रणता थइयै प्रसंन ।
मत्य (आ) सारै माहरी, हूं वरनवीस विसंन ।।5

ईसरदास का समस्त प्रयास प्रकारान्तर से हरि के गुण, लीला और नाम-कीर्तन का प्रयास है । ऐसा करने से कर्म-बन्धन से मुक्ति मिलती है, यह उन्होंने बार-बार कहा है । भागवत में विराट् पुरुष और उसकी विभूतियों का वर्णन

है (दूसरा, तीसरा और ग्यारहवाँ स्कन्ध)। इस रचना में ब्रह्म, उसके निर्गुण-सगुण, विराट् स्वरूप का अनेकविध उल्लेख किया गया है। जब संसार में कुछ भी नहीं था, तब वही एक था—'तई एक तू एक'। इसी 'एक' का उल्लेख निषेधात्मक और विध्यात्मक—दोनों प्रकार से किया है। क्रमशः उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(क) जई काम न कोप न क्रोध न काया।
जई मांम न ममता नहीं मोह माया।
जई जंत न तंत न मंत्र न मूलं।
जई थाप न जाप न सेष न थूलं।
जई देह न काल न पात्र न दानं।
जई वांणी न षांणी न पांणी न (प)वनं।
जई आभ धरती नहीं आदि अंतं।
तई एक तू एक हुंतौ अनंत ॥ (—कलकत्ता-प्रति)

(ख) नमो देव देवाधि वैराट देहं, नमो जाइया विषै जै विसव जेहं।
नमो सकल ब्रहमड जै सेप साई, नमो लिपमी चरण ची सेव लाई ॥
नमो ब्रह्म चा रूप वैकुंठवासी, नमो द्वारि आठइ नवै निधि दासी।
नमो तूं नमो तूं नमो पदमनाभं, नमो अनंत वेळा घड़े धरणि आभं।
नमो पुरषि ब्रह्मा पिता नाभपदमं। नमो प्रागवड़ पान पौढण परम ॥
(—कलकत्ता-प्रति)

इसी प्रकार समस्त रचना में हंस, मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिह, वामन, दत्तात्रेय, परशुराम, राम, कृष्ण, बलवीर आदि का तथा भविष्य में होनेवाले कल्कि-अवतार का उल्लेख-वर्णन किया गया है। इनमें भी दशावतार पर विशेष आस्था रखते हुए नृसिह, राम, कृष्ण और कल्कि का विस्तार से वर्णन किया है। कइयों में तो सम्बन्धित कथा का क्रमबद्ध रूप भी नहीं मिलता। कारण यह है कि प्रत्येक छन्द अपने आप में स्वतंत्र है; उनमें पूर्वापर सम्बन्ध नहीं है। 'नमो' शब्द का बहुल प्रयोग भी यही द्योतित करता है। राम सम्बन्धी दो छन्द ये हैं :

नमो किया क्रितारथ जिनिपि कामं।
नमो रामि चेताविया फरसरामं।
नमो वाच दसरथ कजि लीध वनं।
नमो मेल्हतै राज नहचले मनं।
नमो वनवासि विसन पारब्रंभं।
नमो धीरयण राषियो जेण ध्रंमं।

×

नमो साजि मारीच असाध साधं।
नमो विरिधियो दैत विषै व्रियाधं।
नमो प्रवित कीयऊ कारण पहिला।
नमो उधरी ओण रेणा अहिला।
नमो नाक विण कीध जै सूपनषा।
नमो विंधिया सपत सहि ताड व्रिषा।
नमो राम चै वांण षर दुषर रुळिया।
नमो दसचत्र सहस जिण दईत दळिया।। (—कलकत्ता-प्रति)

'गुण आगम' की भाँति इसमें भी भावी—कल्कि अवतार, उसकी सेना, 'कलिग'-वध, दुष्ट-संहार, पृथ्वी से विवाह और सत्ययुग की पुनः स्थापना करने का सविस्तर वर्णन है। उसकी सेना में सभी देवी-देवताओं के साथ पाण्डव, सिद्ध, चारण, नाथ, पैगम्बर, शेख, पंडित और पीर, मीर, हुसैन, उनके अनुयायी आदि अनेक वीर होंगे। इस प्रकार कवि श्रद्धालु जगत को आश्वस्त करता है :

नमो सतरि हजार हुसैन साथे। नमो मेलियौ जाथ कालिंग माथे।
नमो मीरजादं मिलै साथि मीरां। नमो विलहियै तुरी बावन वीरां।
नमो कोडि वीरां मिलै कोडि मीरां। नमो पिंडतां कोडि मिल्नि कोडि पीरा।।
नमो सेखजादां मिले कोडि सूरा। नमो कोडि पैकबरां कोडि पूरा।

× × ×

नमो विसन वधाविया चिहुं वेदे। नमो सुरिअणे गुणे संते सुभेदे।
नमो सिध चारण अछर सिधि सभागे। नमो नाथ वषाणियो नर नागे।
नमो नवनवा कलप अवतार नवा। नमो किसन कलि अवतरे प्रवित करिवा।
नमो एक एका भलो अवतारं। नमो प्रवाड़ा तास कुंण लहै पार।
नमो ईसरा सांमि अणकल अनंतं। नमो बाप वैराट चा नामवंत।
(—जयपुर-प्रति)

15

10. निंदा स्तुति :

इसकी चार प्रतियाँ मिली है, सबमें पाठ-भेद और छन्द-संख्या में अन्तर है। (यहाँ जोधपुर की प्रति के आधार पर विवेचन किया गया है। जयपुर की प्रति में 13 दोहे, 201 बेअक्खरी और 1 'कळस का कवित्त'—छन्द है। यह कवित्त-'नमो नाग नीमवण···' वस्तुतः रासकीला का है, देखें—हरिरस का विवेचन। शेष प्रतियों मे दोहे और बेअक्खरी छन्द ही पाए जाते हैं)।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इसमें परब्रह्म और उसके अवतारों की निन्दा में स्तुति की गई है। यह निन्दा अनेक प्रश्न, व्यंग्य, उपालम्भ, निष्कर्ष, स्पष्टोक्ति के रूप में है और कवि की भगवद्-भक्ति, परमेश्वर पर निस्सीम विश्वास, आत्मनिवेदन, उसके गम्भीर शास्त्र-ज्ञान और चिन्तन की द्योतक है। साथ ही, इसमें तद्युगीन लोकव्यवहार और मान्यताओं के संकेत, धर्माचरण की शिथिलताओं का चित्रण, हिन्दू-मुस्लिम एकता और समन्वय का प्रशस्य प्रयास है। ईसरदास की अन्य रचनाओं में ही नहीं, समस्त राजस्थानी काव्य में यह रचना अनुपम है।

रचना में परब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूप विषयक अनेकशः प्रसंगों और कथाओं के उल्लेख है जिनमें नृसिह, राम, कृष्ण, कलियुग और कल्कि-वर्णन विस्तार से हैं; किन्तु सबमें स्वर वही है। यह स्वर आत्मनिवेदनपरक अन्तिम छन्दों में बदला है, जिनमें कवि अपने उद्धार की दैन्य-भरी पुकार करते हुए इस निन्दा मे स्तुति करने का विनम्र कारण भी वताता है।[1] यह तो स्पष्ट ही है कि ईसरदास ने इस शैली में प्रकारान्तर से भगवद्गान और नाम-स्मरण ही किया है। नीचे रचना के कुछ प्रसंगों का उल्लेख किया जाता है। आरम्भ में देवी-स्तुति[2] के पश्चात् भक्त कवि 'स्वामी कान्ह' से प्रश्नारम्भ करता है :

इतना बड़ा विश्व किस काम के लिए बनाया है ? फिर, इसको और इसमें की चारों योनियों को बनाते और नष्ट क्यों करते हो ? इसके नष्ट होने के बाद क्या बचा रहता है ? क्या त्रिगुण किए बिना तुम्हारा कोई काम रुकता था ? उनको क्यों बनाया ? कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड की रचना करके भी ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ तुम्हारा एक पग भी ठहरा हो। जिस कारण से विश्व बनाया, उसका मर्म मुझे कहो। जग तो सब जाता हुआ दिखाई देता है किन्तु तुम तो कहीं भी दिखाई नहीं देते, फिर भी आगे-पीछे तुम ही एक हो। तुम

---

1. ततनिंद्या मैं कीधी तोरी, मुजरै ओळग आंणो मोरी।
कारणि जण जो निंद्या कीजै, ताहरी निंद्या विसन तरीजै।
उर तोरो मूं रातो दीहां, बहुनांमी हूं बीहां बीहां।
(यह पंक्ति जयपुर प्रति से है)
मनि ए मसो रहियौ मोनू, त्रीकम घणो न धायौ तोनू ॥
(हे प्रभु ! मैंने तुम्हारी स्तुतिपरक निंदा की है और इस प्रकार) तुम्हारी प्रार्थना में अपनी सेवा अर्पित की है। हे विष्णु ! जो लोग इस कारण तुम्हारी निंदा करते हैं, वे इस प्रकार की निंदा से (भवसागर के) पार हो जाते है। हे बहुनामी, मैं तुम्हारे डर से रात-दिन डरता-डरता रहा हूँ। मुझे मन मे (हर समय) भय बना रहता है (जिसके कारण) हे त्रिविक्रम, मैं तुम्हारा अधिक ध्यान नही कर सका)।
देवी जो रजा दियै, मो तूं तूसै माई।
वरनव कीजै वीनती, केवळ आगै काई ॥

स्वयं का तन स्वयं को ही भक्ष करवाते हो। ऐसा क्या संताप तुम पर आ पड़ा है ? एक को तो नरक और दूसरे को वैकुण्ठ-वास देते हो ! तुम्हारी यह करनी केवल तुम ही जानते हो।[1]

जगत का सृजन कर तुम स्वयं ही दुखी हुए हो, अपनी बुद्धि में तुम स्वयं ही बँध गए हो। जीवों की सर्जना के धंधे में तुम पड़े ही क्यों ? फिर जीवों को इतना दुख दिया और झूठे वचन को भी सत्य सिद्ध किया। पूर्व में पता नहीं, तुमने कितने ही खेल दिखाए किन्तु उनको देखनेवाला कोई नहीं जन्मा। तुमने सभी देवों को भक्ति-उपदेश दिया; मोटा काम तूने यह किया कि अनन्त कोटि अवतार रूप में आया। बिना कर्म छोड़े प्राणी छूट नहीं सकता, छूटता वही है जिसको तू छोड़ता है। तू बार-बार अवतार लेता है और उसी कर्म-अंकुर को ले-लेकर उठता है। और बिना कर्म-बीज नाश हुए, संसार

---

1. पूछूं हूं जो तू पुंणै, संभळि कन्हळ सांम।
बिसन एह अवडो विसव, कीधौ केहे कांम ॥2
घड़ि भांजै भांजै घड़ै, चवभुज थांए चियारि।
मिळियौ माल स दाषि मो, भूधर तूझ भंडारि ॥3
कारण अवडो कीधौ स कहि, थाए धरणि की थंप।
भूधर घड़तै भाजतै, केताई गया कळप ॥4
ज्याग न वेद न जोग जप, निरंजण पुरुष न नार।
यह प्रिथमी भांगी पछै, आछै किणि उवार ॥5
घणसुखा घण नीमवए, घणदीहा घणस्याम।
त्रिगुण कियै विण ताहरै, की अणसरियौ काम ॥6
कोटि कोटि ब्रह्मण्ड कियौ, गढ गिर सागर गांम।
एक पग न उभदा, थारै नाही ठाम ॥7
कारणि जिण विसव कियौ, मूझ स दाषौ मरम।
जुग सह दीसै जावतो, वळत न दीसै ब्रहम ॥8
घणै हूत कीधौ घणै, पंण रे संकी पांण।
ते तैरौ ते तै ज तू, नाराइण निरवांण ॥9
कोई तो विए बीजो कियौ, आतम करै अनेक।
पाछै ही तू एक प्रभ, आगै ही तू एक ॥10
जिकू असरियौ जांवतौ, अषळि कियै विए ईस।
करुणाकर ईसर कहै, आधि स भगति अधीस ॥11
आप षवाड़ै आपनै, आप तणौ तन आप।
अवड़ै की पड़ियौ अनत, सिरजए हार संताप ॥12
नारइकी ऐकां नरा, वैकुंठि हेकां वास।
ताहरी तू जाणै त्रिगुण, लीला लीलविलास ॥13

दुखी होता है। ऐसी खरी बात कहने पर तू खीजता है।[1]

तू पान चरते हुए की खाल निकलवाता है। साँस-साँस में सब जीवों की सम्भाल करते हुए भी तू चरते हुए मृग-झुण्ड को मारता है, तुझे दया नहीं आती। लवेरी गाय तक को वेदना में डालता है। नारायण का सबमें निवास है। फिर पक्षियों को क्यों मारता है ?[2] ऐसे अनेक काम तू करता है। किन्तु अब तू अपने खेल से बाज़ आ, यह बाज़ी समेट और सभी जीवों को सुखी कर, मोक्ष प्रदान कर। तू जुल्म मत कर इससे 'हुरमति' (अ.—प्रतिष्ठा, इज्जत, आबरू) जाती है। पर मेरी सच्ची बात तुझे कैसे सुहाएगी ?

तूने कर्तृत्व-भाव से रहित होते हुए भी सब कुछ किया है, रूपविहीन होकर रूप पर रीझा है। तू अठारह भार वनस्पति को तोलता है, समुद्र को सुखाता है, सुमेरु पर्वत को उड़ाता है, फूँक कर पृथ्वी-आकाश को फोड़ता है, कल्पतरु और सूर्य को नष्ट करता है तथा अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड उत्थापित करता है। पर ऐसा करके क्या फल प्राप्त करता है ? फिर अपनी बाज़ी वापस समेटता है और मनुष्य, नाग, देव आदि सभी को मार डालता है। उबारता है तो केवल स्वयं को। और पुनः मायाजाल की रचना करता है। तू बच्चों का-सा यह हठ छोड़ता नहीं है। अपनी युक्ति तू ही जानता है। तू अपनी करनी देख। लक्ष्मण जैसे भाई और सीता जैसी रानी का त्याग किया। पहले भरी सभा में पाण्डवों को लज्जित किया और फिर द्रौपदी का चीर बढ़ाया। परशुराम के रूप में तूने अपनी माँ का सिर काट डाला। ऐसे अनेक काम करने पर भी तुझे पाप नहीं लगता। इस रूप में तूने दुष्टों को मारा किन्तु फिर सर्वस्व त्यागकर वन में क्यों चला गया ? बलि से धरती वापस माँगते समय तुझे लाज नहीं आई। राजा अम्बरीष के माध्यम से दुर्वासा को झूठा साबित किया। नारद को पहले तो माया-मोह में लिप्त किया और जब वह तेरे पाँवों में पड़ा, तो उसको ज्ञान दिया। बिना पोथी-पाना पढ़े गोरखनाथ को तूने अपने ज्ञान से प्रबुद्ध बनाया। अहल्या-प्रसंग में इन्द्र को लज्जित किया। तूने दक्ष प्रजापति का सिर विनष्ट कर दिया पर किसी ने तुझको

---

1. केवळ मोटो कांम कंमायो, अनत कोटि अवतारे आयो।
जगत तणो सोह अंतरजामी, सुष दुष थयो भोगदण सामी।
छोडै करम न प्राणी छूटै, छोडै तू पणि तुही ज न छूटै।
परि पर तू अवतार परठै, अकुर ओही ज ले ले उठै।
दुषी जत संसारि दुषीजै, षरो कहंतां रषे षीजै।

2. सास ज लै सो जीव संभारै, मिरघा वेड़ चरता की मारै।
अवगति तोनू दया न आवै, कवळी गाय नू विघन करावै।
नारायण सब भूत निवासी, पषी म मारो गळि दे पासी।

बुरा नहीं कहा। पार्वती (सती) का स्वर्गवास होने पर तप करते हुए महेश को उठवाया और बेचारे कामदेव को जलवाया। ब्रह्मा को भी तूने अनेक बार भटकाया है। तुझे लोकलाज थोड़े ही है! रीछणी जामवंती को पत्नी बनाकर रखा और रुक्मिणी को समुद्रतट पर वास दिया। तेरी गति तू ही जाने! तूने सारे यादव-कुल का तो संहार किया किन्तु एक पारधी के हाथों मरा। गोपियों को लोगों से लुटवाकर तूने अर्जुन की निन्दा करवाई। मधुवन में अन्य सभी गोपियों को छोड़कर एक अकेली नारी को ले गया। चन्द्रावली को महावृक्ष पर चढ़ाकर खेलते हुए अपनी प्रसन्नता के लिए उसे रुलाया। तूने वृन्दावन में खेल खेले और भ्रष्ट अहार (चोरी का) करता हुआ घर-घर भटका।[1] तूने पूतना का रुधिर-पान किया। गोकुल में तो तूने बहुत 'कोकट' (प्रपंच) किए। मक्खन की चोरी की, क्षण-क्षण में खट्टी छाछ का पान किया, दही खाया और पकड़े जाने के डर से, दिखाने के लिए मुँह पर अनेक बार मिट्टी लगाई। दूध पर से मलाई उतार लेता और नित्य-नित्य लड़ाई होती। अहीरों की तो तूने जूठन खाई और ब्राह्मण के घर यज्ञ-रूप होकर बैठा। यों तो तू अनादि पुरुष है—अनन्त वर्षों का बूढ़ा है पर गोकुल में गोपियों के साथ बालक रूप में रमा। बचपन तो गोकुल में बिताया किन्तु पश्चात् सबको भूलकर मथुरा की नारियों की वन्दना करने लगा। गोपियों के बुलाने पर गोकुल तो लौटकर आया ही नहीं। कुब्जा को तो मान दिया किन्तु अपने मामा कंस को मार डाला। तू बड़ा गौड़बाजिया है। मथुरा में भी नहीं टिका, वहाँ से द्वारका चला गया। तत्क्षण विश्वकर्मा को बुलाकर सागर के तट पर द्वारका जैसे दूसरे वैकुण्ठ का निर्माण करवाया और उसमें उग्रसेन और छप्पन कोटि यादवों सहित बसा। फिर तुमने रुक्मिणी से विवाह किया यद्यपि वह अनादि काल से तुम्हारी स्त्री ही थी। यद्यपि तुम्हारे सोलह सहस्र युवती गोपियाँ थीं तथापि रुक्मिणी आदि आठ को पटरानी बनाया। प्रत्येक को पृथक्-पृथक् घर में बसाया उनके आँगनों में सुरतरु उगाये। प्रत्येक गोपी ने तुझको जन्म-जन्मान्तर में वर रूप में पाने की कामना की किन्तु तू किसका है? नारद ने अनेक प्रकार

1. रीछड़ी तणो जांण तू राजा, लोक तणी काई नांही लाजा।
रैणायर तटि रुपमणि राखी, ताहरी गति न जाये भाखी।
सगळोई जादव वंस सधारी, मिग्रम तणै सर मुयौ मुरारी।
लोका हाथि गोपि लूटावी, कौ अरजण री निंद्या करावी।
मधवन माहि गोप सहि मेली, एक नार हरि गयो अकेली।
चन्द्रावली महाव्रष चाड़ी, रमतै रळियां काजि रोवाड़ी।
रामति विंद्रावन मांहि रमियौ, भिसट अहारी घरि घरि भमियौ।

से क्रीड़ा करते हुए तुझको प्रत्येक के पास देखा। इस प्रकार आश्चर्यचकित नारद तुझे नमस्कार कर रह गया। तेरे सोलह सहस्र रानियाँ होने पर भी तू ब्रह्मचारी रहा! तूने मच्छ, कच्छ और वराह रूप धारण कर अनेक काम किए। सिंह का मुख बनाकर खम्भ फाड़कर प्रकट हुआ और हिरण्यकशिपु को मारा। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु—दोनों बाप-जाए भाइयों को पराए काज के लिए मारा।

न तू मासी गिनता है, न मामा। जो जैसा करता है, उसको वैसा ही फल देता है।[1] पृथ्वी को जल में डुबो कर तू प्रयाग में वट-पत्र पर पोढ़ा रहा। जल में घुस कर तूने मधु कैटभ और असुरों को मारा तो समुद्र रक्तरंजित हो उठा। तुझे दया नहीं है; श्वपच, कसाई और सुरा तुझे सुहाते हैं। मन में न सहोदर को गिनता है और न साले को।[2] तूने छल, बल और अनेक युक्तियों से दानवों का वध किया। तू ब्राह्मण का रूप बनाए वेदों को पढ़ता हुआ राजा बलि को बाँधने के लिए आया। उसने तेरा पग-वन्दन किया। तेरे मन में तो झूठ-कपट था ही। जब बलि ने माँगने को कहा, तो उसको 'उदक' करवा कर तीन पग धरती माँगी। शुक्राचार्य के रोकने पर उसको काना किया। अब तो तू बढ़ने लगा; तीसरा पग उसके सिर पर रखा और उसको पाताल भेज दिया। यह छल किया। किन्तु उसको बाँधने पर तू स्वयं भी बँध गया, उसका पोलिया बना।[3]

देवों ने जब मंथरा को कैकेयी की मति पलटने के लिए भेजा, तो तूने उसकी मति ठीक नहीं की। फिर तूने कैकेयी की मति भी फेरी। उसने भरत के लिए

---

1. भूधर थारै केव्हा भाई, सबळा लेपै नहीं सगाई।
मासी गिणै न मन में मांमा, करै तसा पुंहचावै कांमा।

2. अवगति तोनू दया न आवै, साइज कसाई सुरा सुहावै।
जवने दीठै होवै ज्वाळा, सहोवर गणै न मन में साळा।

3. वेद चियारे भणतो ब्राह्मण, बळि राजा नै आयो बाधण।
कूड़ कावड़ी मन मांहि कूड़ो, षुज दज हुवो षूबड़ो षोड़ो।
बळि रै द्वार भणैवा बैठो, वदियो सुक्र राजा ए वीठो।
बळि पगि लागो वाले वाहा, मांगि जिकु हरि मागै मुंहा।
राव हूं आयो पोळ रहेवा, कीरति थारी घणी करेवा।
जळ ग्रहियो साई विधि जाणी, उदक करेवा गगा आंणी।
धरम री मागूं हूं धरती, नान्हा पै म्हारा त्रण नरती।
× × ×
बळि छळि गाठि किसा द्रव बाधा, महलदार होई रहियो मांधा।
बळि बाधतो आप बंधाणो, कूड़ा री पोळियो कहाणो।

राज्य और राम के लिए 'देसोटो' (देश निकाला) माँगा। इस पर जब दशरथ अत्यन्त क्रुद्ध हुए तो राम ने पिता के वचन मानने के अनेक कारण बताए।[1] राम वन गए। सीता को कौन चुरा सकता था? किन्तु तूने माया दिखाई। था तो तू एक ही निरंजन किन्तु राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—चार भाई बना। तूने गयासुर, बाणासुर और शंखासुर मारे। त्रेता युग में जहाँ-जहाँ दैत्य मारे, उन सबको तीर्थ बना दिया। तेरी गति कोई नही जानता। बिना सेवा के ही सायुज्य मुक्ति दे देता है। अवगुण करते हुए असुरो को अपनाता है। पापियों को भक्तों से पहले तारता है। तेरे सेवक तो तेरा स्तवन करते हुए भी कष्ट पाते हैं और दैत्य तुझको गाली देते हुए भी उद्धार पाते हैं। हे नरहरि ! यह न्याय ठीक नहीं है। तू ही मारता है और क्षणमात्र में तार भी देता है।[2] तूने कंस को स्वर्ग और कुब्जा को वैकुण्ठ-वास दिया। तू विचारहीन और बावला है, जरा-सी बात से ही भ्रमित हो जाता है। तू तो उन पर रीझा है जो क्रूर, कपटी, मन के काले और तलवार की मार से तेरी पूजा करते हैं। रीछों से तू व्यवहार करता है और 'भरवाड़ों' (व्यर्थ भटकनेवालों) के साथ घूमता है। मैं तो ज़ोर से ये सत्य बातें कहता हूँ।[3] तूने कौरवों की जड़ें खोदीं और अनेक स्त्रियों को वैधव्य देकर उन्हें रुलाया। उनको रोती देखकर तू हँसा और आनन्दित हुआ। चतुर बातें बनाकर उनका रुदन बन्द करवाया। उन्हें बताया—हे बालाओ, वे सब मेरे ही रूप थे, वे अब वैकुण्ठ में हैं।

---

1. दसरथ राम दूहेला देखे, उठि चालिया राज उवेखे।
   पिता वाच जो राम न पाळै, तो सूरज अंधार न टाळै।
   पिता वाच जो राम न पाळै, तो जुधिष्ठिल जाइ गळै हैमाळै।
   पिता वाच जो राम न पाळै, तो वरसै नहि मेह बरसाळै।
   पिता वाच जो राम न पाळै, डीभरुआं मां छेह दखाळै।
2. जुग जुग जवन साझिया जेता, ते तीरथ सह कीधा तेता।
   देव चिरत हूं लहूं न देवा, साजोजि मुगति दियै बिन सेवा।
   सेवग कसि कसि मुगति समापै, उसरा अवगुण करतां आपै।
   वैर भाइ वाणियौ वहला, पापी तारै भगतां पैहला।
   कसटै सेवग तवन करीता, दईत उधारै गाळी देता।
   नरहर न्याव भलौ ए नाही, मारै त्यूं तारै षिण मांही।
3. ओसर उधरै झषता ऊणौ, बड़ा देव तू अदिठि हूणौ।
   गोविंद तू गरढो नै गहलो पांतरियौ थोड़ोइ ज पहलो।

   × × ×

   रीछां ही सूं ने दे रहियौ, भरवाड़ां रै साथै भमियौ।
   साच कहूं हूं गाढे सादे, विठल सदा अधायो वादे।

अनेक प्रवाड़े (कृत्य) कर तू वैकुण्ठ पहुँचा। जाते समय कलियुग आने की बात कह गया, सो पाण्डव अपना राज्य त्याग कर पांचाली समेत उत्तरापथ में हिमाचल पर चले गए। उन्होंने पृथ्वी को विजय किया था किन्तु वह उनके साथ नहीं गई।

उड़ीसा में तू जगन्नाथ कहाता है किन्तु वहाँ बिना अपनी स्त्री के ही विराजमान है। वहाँ उड़ीसा (पुरी) में जो तू भोजन करता है, उससे, हे विष्णु! जगत विस्मित है। वहाँ सभी —ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि एक साथ खाते हैं और जो भेद-भाव करते हैं वे कोढ़ी होते हैं।[1] तेरी जगत-गति कौन जान सकता है? तू बिना हथियार जगत को जीतता है।

तू जैन धर्म में भी जा मिला और लोंकागच्छ, तपागच्छ, खरतरगच्छ आदि सामने आए। कपट और खोट ने नवों खण्डों को खा लिया। ज्ञान, वेद और शास्त्र का लोप किया। माथा और दाढ़ी मुँडवा कर 'मोडा' बने ऐसे लोग दया का मार्ग बताते हैं। बनिए तो इस भुलावे में आ ही गए।[2]

तू नए-नए नाम धारण करता है। अब दसवाँ —कल्कि अवतार लेकर, असुरों का उत्थापन और देवों का उद्धार कर। पीपल, गाय और सत्पुरुषों की पालना कर। 'किलंग' और दुष्टों का दमन कर तथा मेघकन्या—मेघड़ी (पृथ्वी) से विवाह करके मेघों को बड़प्पन दे। पहले भी तो तू रीछणी (जामवती) से विवाह करने आया था। तेरे इस विवाह में मेघ 'पड़जानी' होंगे और जानी (बाराती) होंगे—मुगल। तुझे तो नीच, पतित और नीची जातियाँ प्रिय है, त्रेतायुग में अनेक रीछ, वानर आदि तरे थे। सो, अब उस पूर्व प्रीति को पाल। अब कलियुग में अधर्म छा गया है और एक सौ आठ व्याधियाँ खड़ी हो गई है। अब तो अधर्म पहरेदार है, झूठ पास में बसता है और हत्यारे

---

1. लीला वावन भोग लगावै, ऊड़ीसे जगनाथ कहावै।
नाथ नावड़े पाषी नारी, माहै अजै रमै मंहियारी।
जीमण ऊडीसै जां जीमै, विसन जगति आई विसमै।
षत्री ब्राह्मण भेळा षायै, षायै भाति स कोढी थायै।

2. जैन धरम मांहि मिलियौ जाए, लू का, तपा खरतर लाए।
प्रथी विषै चलविया पाषड, षोट विदत षाधा नवही षंड।
ग्यान वेद सासति गोपविया, राषिया धरम जिगन रूसविया।
कामधेन रै पूंछ कटावै, हाथ झालियो विट बहलावै।
माथै नै दाढी मूंडावै, अतरि मोडा वैठो आवै।
दया तणा मारग दाषविया, वाणियां इण भोळै वीसमिया।

कोटवाल हैं ।[1]

पर तू कौन-सा गुणवान है? 'सुगणो' (भला) तू नहीं है। कंस तेरा मामा, पूतना तेरी मासी, रीछ(जामवंत)तेरा ससुर और रुक्मैया तेरा साला है(जिसका तूने अपमान किया)। कुदर्शिनी और काली कुब्जा तेरी मित्र है। और मन तेरा पराए धन पर है। राक्षसों को तो तूने भरपेट दिया किन्तु हनुमानजी को केवल 'कछोटी' (जाँघिया) ही दी। असुरों को संजीवनी विद्या और साँपो को अमृत दिया।[2] तू चन्द्रमा को ग्रहता और शनीश्चर को छोड़ता है।

तू नौकर के हाथों मालिक को मरवाता है। तूने हुसैन को मरवाया। पहले तो उसको 'अजीजों' के आगे खड़ा किया और बाद में मरवाया। वह प्यासा ही मरा। और अहमद को तो बिना कुछ किए ही तोड़ डाला। तूने रसूल की कोई औलाद क़ायम नहीं रखी। सब पीर-पैग़म्बरों को तूने कष्ट दिया। कहाँ तक कहूँ ? तेरे सब कृत्य कहना कठिन है।[3]

मरनेवाले को तू कुमौत मरवाता है। तू सब जीवों का स्वामी है, फिर भी जुल्म करवाता है। जिसका तू सृजन करता है, उसी को संहारता है। बिना दोष के सूली पर चढ़वाता है। पहले ऊँचा चढ़ाता है और बाद में नीचे पटकता है। गलत मार्ग पर जानेवाले को भी कुशलता से (सही मार्ग पर) ले आता है। तू तो खिलवाड़ करता है। बलि को तो बाँधा ही, सागर को भी बाँध दिया। युधिष्ठिर को जानबूझ कर झूठ बुलवाया, हरिश्चन्द्र से पानी भरवाया, पड़े हुए कर्ण को मरवाया और अपने ही चेलों का सिर चूर्ण किया।

यदि मैंने कोई असत्य बात कही हो, तो बता। अपर सब लोक तो अन्यायी

---

1. ठाकुर न्याव करै जम थारै, माइत बैठा छोरू मारै।
कलि तै जीवण कीधौ काछौ, सिरजणहार कियौ मित्र साचौ।
जुरा धगड़ी सु थारै जाडौ, अध्रम पोळियौ राखियौ आडौ।
पापोड धाते राखै पैठो, कूड़ो वसै ढूकड़ो काठो।
केता अतक करै कोटवाळी, डाकळिया पेत्रपाळ दिषाळी।

2. सरपा सूं ताहरै सगाई, जवन प्रणकली काळ जमाई।
दुसट पोळियो मथुरा दासी, मामो कस पूतना मासी।
सुसरो रीछ रुपमियौ साळौ, कुबिजा मीत कुदरसण काळौ।
मन पर धन मेलियो मही, नाराइण तू सुगणो नहीं।
राकसा तणी वधारै रोटी, किसन हणूं न दियै कछोटी।
उसरां विद्या सजीवन आपै, सरपा हाथै अमी समापै।

3. रसूल तणी ओलादि न राषी, दीणाई सू ही कठणाई दाषी।
पीड़िविया सह पीर पैकंबर, कहतां इतु कठण करणाकर।

है, केवल तू ही सच्चा है, परम सच्चा है। तू रावों का राव है। हिन्दू-तुर्क सब में तू ही एक है।

'हिन्दुवाणी-तुरकाणी' सब तेरी ही है, कोई पराई नहीं है। एक नारी पूर्व दिशा और एक नारी पश्चिम दिशा की ओर नमती है। जपमाला दोनों के हाथ में एक है। एक उसे माला कहती है और एक 'तसबी'। एक व्रत कहती है, एक रोजा। एक 'वारात' कहती है, एक 'होजा'। एक ईश्वर कहती है, एक आदम। एक अनन्त कहती है, एक आलम। एक कहती है 'डरां' और एक कहती है 'बीहां'। मर्द तो केवल तू ही एक है, बाकी सब स्त्रियाँ हैं।[1]

तू मरों को जिलाता और जीवितों को मारता है। तैरतों को डुबाता और डूबतों को तारता है। उजड़ों को बसाता और बसतों को उजाड़ता है। पड़ों को खड़ा करता और खड़ों को पटकता है। खाली को भरता और भरे हुए को खाली करता है। तेरे तैराये तो पत्थर भी तैर जाते हैं। तेरी इच्छा से विष अमृत बनता है। देव को तू क्षण भर में आदमी बना देता है। कथन मात्र से तू दिन को रात्रि और दिन को सदैव के लिए रख सकता है। थल जल और जल थल हो जाता है।

हे परमेश्वर! मैं किसी को भी नहीं पहचानता। जो तू कहता है, वही जानता हूँ। मैं तो भक्ति-हेतु यह सब कहता हूँ। मुझे मुक्ति प्रदान कर जिससे सुख मिले और मेरा यह दुख टल जाए। तू ऐसा कर जिससे मैं अपने सब पाप त्याग सकूँ। मै जन्म-जन्मान्तर से भटक रहा हूँ। समुद्र में बेड़ी है, डर रहा हूँ। भटकते-भटकते बेड़ी में जल भर गया है। मैं तो तेरे नाम की पतवार के सहारे हूँ। हे त्रीकम! मुझे तार!

इस प्रकार, भक्ति और अध्यात्म के क्षेत्र में ईसरदास ने विविध प्रकार से महान् और चिरस्मरणीय योगदान दिया।

---

1. रावा राव राण तू राणां, तूं एको ज हिंदू तुरकाणां।
ताहरै हिंदवांणी तुरकांणी, राघव कहि केही पराणी।
नारी एक पिछम दिस नमै, पूरब दिस एक नार प्रणमै।
करि एकणि जपमाळा कीधी, दूजै हाथ तसबी दीधी।
एक कहे वरत एक कहै रोजा, एक कहै वरात एक कहै होजा।
एक कहै ईस एक कहे आदम, एक कहे अनंत एक कहे आलम।
एक कहे राति एक कहै दीहां, एक कहै डरां एक कहै बीहां।
मरद एक तू बीजी महलां, वेगो फुरै गरीबां वैहलां।

4

भाषा, शैली और छन्द

1

ईसरदास की भाषा राजस्थानी है, जिसके कई स्तर लक्षित होते हैं। डिंगल गीतों और 'हालाँ झालाँ रा कुण्डळिया' की भाषा साहित्यिक है। हरिरस, गरुड़ पुराण आदि की भाषा सरल तथा निर्गुण भाव के पदों (सबदों) की बोलचाल की राजस्थानी है जिसमें यत्र-तत्र ब्रज, खड़ी बोली आदि का पुट भी है, दूसरे शब्दों में 'सधुक्कड़ी' है। बाललीला (क्रस्न ध्यान) की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज अर्थात् पिंगल है। शेष रचनाओं—रासकीला, गुण वैराट, निन्दा स्तुति आदि की भाषा सरल राजस्थानी है जो कभी-कभी साहित्यिक और कभी-कभी बोलचाल की भाषा के स्तर को छूती हुई चलती है। उनकी भाषा विषयानुसार रूप धारण करती है। एक चारण कवि होने के नाते उनका इस शैली की काव्य-परम्परानुसार रचना करना तो स्वाभाविक ही है किन्तु निर्गुण भक्ति-भाव के पदों की भाषा देखकर सहसा यह विश्वास नहीं होता कि ये भी चारण कवि की रचनाएँ हैं। भाव और भाषा का ऐसा प्रयोग और समन्वय विरल है। लोकहृदय की पहचान रखनेवाला कवि ही ऐसा कर सकता है।

2

ईसरदास ने कई प्रकार से अपनी बातें कही हैं। भाषा की भाँति विषयानुसार उनकी शैली भी बदलती है। 'हालाँ झालाँ रा कुण्डळिया' भावप्रधान रचना अधिक है, वर्णनात्मक कम। उनके ऐतिहासिक और वीररसात्मक डिंगल गीत प्रशस्तिपरक रचनाएँ हैं। भक्तिपरक रचनाओं का मुख्य विषय ब्रह्म-निरूपण, हरिगुण-गान, स्तुति और आत्मनिवेदन है। अपने शुद्ध रूप में ब्रह्म निर्गुण और निर्विशेष है। जब ब्रह्म माया में प्रतिबिम्बित होता है, तब वह सगुण हो जाता है, उसमें गुण आरोपित होते हैं। ब्रह्म का वास्तविक निरूपण तो निषेधात्मक

है, इसलिए उसको नेति-नेति (ऐसा नहीं, ऐसा नहीं) कहते हैं। किन्तु उपासना की दृष्टि से सगुण ब्रह्म का स्वरूप ही व्यावहारिक और उपयोगी है। वह संसार में अवतार लेता और नाना प्रकार से लोकमंगल में प्रवृत्त होता है। वही भक्तों का आराध्य और प्रेमपात्र है। यद्यपि ईसरदास ने ब्रह्म के इन दोनों स्वरूपों का निरूपण किया है तथापि उनका विशेष झुकाव सगुण स्वरूप की ओर ही है, उन्होंने इसका वर्णन अधिक किया है। रासकीला, गुणवैराट आदि रचनाओं में उन्होंने कारण बताते हुए यह बात स्पष्ट की है। उनकी शैली से भी इसकी पुष्टि होती है। मोटे रूप में उनकी शैली के निम्नलिखित प्रकार लक्षित होते हैं : 1. निषेधात्मक, 2. विध्यात्मक, 3. व्याजस्तुतिपरक, 4. प्रश्नात्मक, 5. स्तुतिपरक, प्रशस्तिपरक, 6. आत्मनिवेदनपरक, 7. सम्बोधनात्मक और 8. वर्णनात्मक।

1. **निषेधात्मक और विध्यात्मक** : ब्रह्म के स्वरूप-निरूपण में उन्होंने ये शैलियाँ अपनाई हैं। ऐसा करते समय पुनरावृत्ति-पद्धति का विशेष अवलम्बन लिया है। यह दो प्रकार की है—भाव की और एक या एकाधिक शब्दों की। डिंगल गीत में जैसे एक ही भाव की अनेकविध पुनरावृत्ति उसके प्रत्येक दोहले में होती है और इस कौशल से होती है कि वह हर बार नया-सा लगता है, वैसे ही ब्रह्म-निरूपण में एक भाव की अनेकशः प्रभावी पुनरावृत्ति हुई है। एक या एकाधिक शब्दों की पुनरावृत्ति अनेक रचनाओं में मिलती है।

निषेधात्मक शैली में 'न' (हरिरस, गुण वैराट) या 'नहीं' (हरिरस)—दो शब्दों की पुनरावृत्ति है जबकि विध्यात्मक शैली में लगभग एक दर्जन शब्दों की : नमो, आदेस (नाथपंथी अभिवादन-पद्धति), तू ही ज (केवल तू), किता (कितना) किती बार, केती बार (कितनी बार)—हरिरस में; तूं (तू)—गरुड़ पुराण में; आपण (स्वयं, आप, आत्मस्वरूप)—गुण आपण में; भगवंत हंस (परमात्मा-आत्मा)—भगवंत हंस में; नमो—रासकीला में; तई एक तू एक (तब एक था और तू ही एक था), जई (जब), नमो—गुण वैराट में; देवी—देवियाण में, आदि।

2. **विध्यात्मक** में कतिपय शब्दों की पुनरावृत्ति तो नाम-स्मरण की पुनरावृत्ति है। ये दुर्गासप्तशती जैसी संस्कृत स्तुतियों के अनुकरण पर हैं। उदाहरणार्थ, गुण वैराट के अधिकांश पद्यों और गुण आपण के प्रत्येक पद्य की चारों अर्द्धालियों में क्रमशः 'नमो' और 'आपण' शब्दों की; भगवंत हंस और देवियाण के पद्यों के आरम्भ में क्रमशः 'भगवंत हंस' और 'देवी' शब्दों की तथा रासकीला के पद्यों के अन्त में 'नमो' शब्द की पुनरावृत्ति। ऐसे प्रयोगों से कथ्य तो उजागर हुआ है किन्तु चिन्तन-सरणि और काव्य-सौष्ठव धूमिल पड़ गया है। फलस्वरूप ऐसी रचनाएँ एक प्रकार से स्तुतिपरक जान पड़ती हैं। इनके अतिरिक्त जहाँ

किसी वर्णन के प्रसंग-विशेष मे शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है, वहाँ न केवल कथ्य प्रत्युत् काव्य-सौष्ठव और प्रभावाभिव्यंजना में भी वृद्धि हुई है। निन्दास्तुति में रामकथा प्रसंग में 'पिता वाच जो राम न पाळै' अर्द्धाली की पुनरावृत्ति इसी कोटि की है।

3. **व्याजस्तुतिपरक शैली** (निन्दा के बहाने स्तुति)—का सर्वोत्तम उदाहरण निन्दा स्तुति रचना है। 'हालाँ झालाँ रा कुण्डळिया' में भी इस प्रकार के पद्य मिलते है (संख्या 13,30 आदि)।

4. **प्रश्नात्मक शैली**—हरिरस में इस शैली का प्रभावशाली प्रयोग मिलता है जहाँ कर्म, जीव आदि विषयक प्रश्न उठाए गए हैं।

5. **स्तुति, प्रशस्तिपरक**—आरती, भक्तिपरक डिंगल गीतों और अन्य रचनाओं में भगवद्-स्तुति पाई जाती है। भगवान के सन्दर्भ मे जो स्तुति है, व्यक्ति के संदर्भ में वह प्रशस्ति है। ऐतिहासिक, वीररसात्मक डिंगल गीत ऐसी प्रशस्तिपरक रचनाएँ है।

6. **आत्मनिवेदनपरक**—छोटी और बड़ी—प्रायः सभी भक्तिपरक रचनाओं में आत्मनिवेदन का स्वर मुखरित है। डिंगल गीतों और निन्दास्तुति में तो अत्यन्त निरीह-निश्छल भाव से आत्मनिवेदन किया गया है।

7. **सम्बोधनात्मक**—'हालाँ झालाँ रा कुण्डळिया' में इस शैली का अत्यन्त चित्ताकर्षक रूप दिखाई देता है। जसाजी की स्त्री द्वारा अपने पति, सखी आदि को सम्बोधन कर कही गई उक्तियाँ माधुर्य, ओज और उत्साह भाव की व्यंजक हैं।

8. **वर्णनात्मक**—इस शैली में लिखित रचनाओं में गुण आगम और बाल-लीला (क्रस्न ध्यान) मुख्य हैं।

3

ईसरदास ने गीत के अतिरिक्त लगभग डेढ़ दर्जन छन्दों का प्रयोग किया है। यहाँ गीत के विषय में कतिपय शब्द आवश्यक हैं। गीत राजस्थानी भाषा का अपना छन्द है। हिन्दी, मराठी, आदि किसी पड़ोसी भाषा मे यह नहीं पाया जाता। राजस्थानी में गीत दो विधाओं का द्योतन करता है—डिंगल गीत और लोकगीत। डिंगल गीत कवि-विशेष की कृति है। यह एक प्रकार की छोटी-सी कविता है, जिसमें प्रायः 3 से 6 तक दोहले (पद्य) होते हैं। कई गीतों में अधिक भी मिलते हैं किन्तु 3 से कम नहीं मिलते। इसके 120 भेद माने जाते हैं। राजस्थानी के छन्दशास्त्रीय ग्रन्थों में इनका परिचय मिलता है। पिंगळ सिरोमणी (विक्रम की अठारहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध) में 40,

हरिपिंगल प्रबन्ध (संवत् 1721, अप्रकाशित) में 22, रघुवरजसप्रकास (संवत् 1880-81) में 91, रघुनाथ रूपक गीताँ रो (संवत् 1863) में 74 और वर्तमान मे श्री साँवळदान आसिया के महाभारत रूपक (अप्रकाशित) में 128 (इनमें 8 साणोर गीत के भेद होने से कुल संख्या 120 ही है) प्रकार के गीतों का उल्लेख मिलता है। इनमें मात्रा, गण, तुक, प्रसार आदि का बन्धन रहता है। वैण-सगाई (जो एक प्रकार का शब्दालंकार है) का पालन कठोरता से किया जाता है। ये गीत पाठ्य हैं। एक विशेष स्वर से इनका पाठ किया जाता है। गीत में एक ही भाव को अनेक प्रकार से व्यक्त किया जाता है। ऐसा शायद ही कोई वीर हो, जिस पर एकाध डिंगल गीत न लिखा गया हो। जिन वीरों को इतिहास ने भुला दिया है, उनकी स्मृति को गीतों ने संजो कर रखा है। इस प्रकार गीत, साहित्य और इतिहास—दोनों की अमूल्य थाती है। विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थों में सैकड़ों की संख्या में गीत लिखे मिलते हैं। ऐतिहासिक और वीररसात्मक गीतों में रचयिता का नाम नहीं मिलता, उसका पता लिपिकार के कथन से चलता है। भक्तिपरक गीतों में रचयिता का नाम प्राय: मिलता है। ऐसा शायद ही कोई चारण कवि होगा जिसने एकाध डिंगल गीत न लिखा हो। गीत साहित्य के बिना राजस्थानी साहित्य अपूर्ण और एकांगी है। इस कारण गीत की महत्ता के सम्बन्ध में अनेक उक्तियाँ प्रचलित हैं—'गीतड़ा कै भींतड़ा'—अर्थात् व्यक्ति की कीर्ति या तो गीतों से सुरक्षित रहती है अथवा स्मारक, भवन, क़िले आदि से। इससे एक क़दम आगे बढ़कर कहा गया है :

> भींतड़ा ढह जाय धरती मिळै।
> गीतड़ा नह जाय कहै राव गांगो।

(स्मारक, भवन आदि तो ध्वस्त होकर धराशायी हो जाते हैं किन्तु गीत कभी नष्ट नहीं होते, (यह) राव गांगो कहते हैं)। तथा—गवरीजै जस गीतड़ा, गया भींतड़ा भाज (—बाँकीदास)। (जहाँ यश के गीत कहे जाते हैं, वहाँ स्मारक भवन, आदि का यश दूर भाग जाता है)।

राजस्थानी के बहुप्रयुक्त छन्दों के विषय में यह कथन बहुत प्रसिद्ध है :

> गुणसागर दोहो धणी, गाह महेली सार।
> गीत कवित्त प्रधानड़ा, बीजा पहरैदार॥

(काव्य-साम्राज्य में गुणों का सागर दोहा राजा (स्वामी) है, गाथा अन्तःपुर की शिरोमणि पटरानी है। गीत और कवित्त (छप्पय) प्रधानमंत्री हैं और शेष अन्य छन्द पहरेदार सैनिक हैं)।

ईसरदास ने धर्मशास्त्रों के अतिरिक्त छन्दशास्त्र सहित अनेक अन्य विद्याओं का भी अध्ययन किया था। उनके गीतों का गठन और भाव-प्रकाशन सौष्ठवपूर्ण

है। इसलिए हस्तलिखित प्रतियों में उनके छन्दों और गीतों में छन्दशास्त्रीय दृष्टि से पाए जानेवाले दोष लिपिकारों की असावधानी और भूल के कारण हैं।

गीतों मे उनको साणोर, सावझड़ौ, वेलियौ और अठताळौ विशेष प्रिय प्रतीत होते हैं। वीररसात्मक डिंगल गीतों में मिश्र वेलियौ, वेलियौ साणोर, वेलियौ, प्रहास साणोर आदि का तथा भक्तिपरक डिंगल गीतों में ह्रिरणझप, पालवणी, यकखरौ (इकखरौ), पूणियौ साणोर (जांगड़ौ साणोर), प्रहास साणोर, वडौ साणोर, साणोर, दुमेळ सावझड़ौ, जयवंत सावझड़ौ, अठताळौ सावझड़ौ, वडौ सावझड़ौ, दुतीय गोखा, भाखड़ी, मुड़ेल (मुड़ियाल) अठताळौ आदि-आदि का प्रयोग किया है।

इसके अतिरिक्त ईसरदास ने इन छन्दों के माध्यम से वाणी-रचना की है :

मात्रावृत्त—गाहा या गाथा, दोहा, सोरठा, चौपई, विष्णुपद, पद्धरी, अरिल्ल, बेअक्खरी, उद्धत, सार, हाकल या हाकलि, रंगीक अथवा हरिप्रिया।

संयुक्त वृत्त—कवित्त (छप्पय), कुंडळिया (झड़उलट कुंडळिया)

वर्णवृत्त—भुजंगी, मोतीदाम, आदि।

गुण आपण (उदयपुर की प्रति) मे लिपिकार ने 'चाल' छन्द का उल्लेख किया है। बृहत् पृथ्वीराज रासौ में 'चालि' और 'जुति चालि' छन्दों का प्रयोग है। 'चाल' या 'चालि' नामक किसी छन्द का छन्दशास्त्रीय ग्रन्थों में पता नहीं चलता। डॉ. विपिनबिहारी त्रिवेदी ने इसकी गणना 'फुटकर' छन्दों में की है (चंदवरदाई और उनका काव्य, पृष्ठ 283-84)। गुण आपण के कुछ पद्यों में 16-16 तथा कुछ में 15-15 मात्राएँ तथा लघु-गुरु का कोई नियम दिखाई नहीं देता। इसके पद्यों के लक्षण बेअक्खरी, जयकरी अथवा चौपई से मिलते हैं। इस सम्बन्ध में कतिपय बातों की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में ईसरदास की रचनाओं के पाठों के अनेक पाठांतर और रूपान्तर मिलते हैं तथा पद्यों की संख्या में भी अन्तर है। उनकी एक भी ऐसी रचना नहीं है जिसका पाठ भिन्न-भिन्न प्रतियों मे एक-सा या किंचित् रूपान्तर से मिलता हो। जिस रचना की प्रसिद्धि और प्रचलन ज्यादा है, उसके पाठों के पाठान्तर, रूपान्तर और प्रक्षेप भी ज्यादा हैं। हरिरस इसका उदाहरण है। प्रक्षेपकारों ने तीन प्रकार से प्रक्षेप किया है: मूल पाठ के पाठान्तर करके, मूल छन्द के समानान्तर छन्द में पद्य-निर्माण करके तथा नए प्रकार के छन्द बनाकर। लिपिकारों द्वारा भी निश्चेष्ट-सचेष्ट, आग्रह, दृष्टिदोष, तथा एक रचना के पद्य/पद्यों को दूसरी रचना के मानकर लिपिबद्ध करने आदि की भूलें भी हुई हैं। इन कारणों से हस्तलिखित प्रतियों के गीतों तथा छन्द-विशेषके

अनेक पद्य, छन्दशास्त्रीय ग्रन्थों में दिए हुए लक्षणों पर खरे नहीं उतरते; उनमें न्यूनाधिक रूप में मात्रिक और वर्णिक दोष पाए जाते है । ऐसे पद्यों को मात्रा या वर्ण की दृष्टि से सुधारने में पाठान्तरों और रूपान्तरों का ध्यान रखना आवश्यक है । इसके अतिरिक्त किसी-किसी स्थल/स्थलों पर दो चरणों को अथवा तीन चरणों को पूरा पद्य (चार चरणों का) मान लिया गया है । उन्हें पाठ-मिलान करने पर साधारणत: उचित रूप में लाया जा सकता है, किन्तु जिस पद्य के सभी पाठों में चरण या चरणांश त्रुटित है, उसे खण्डित माना जाएगा । जहाँ तक डिंगल गीतों का प्रश्न है, प्रतियों में उनके लेखन मे मात्रा और पाठ-विषयक अनेक भूलें हैं । लिपिकारों ने उनके नामों का उल्लेख भी प्राय: नहीं किया है; अपवाद को छोड़कर प्रकाशित गीतों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है । अत: उपर्युक्त सीमाओं में उनके मोटे-मोटे लक्षण देखकर ही उनका नामोल्लेख किया गया है; अधिक सामग्री सामने आने पर इनमें परिवर्तन भी सम्भव है ।

ईसरदास के पद या सबद विभिन्न राग-रागिनियों में गेय हैं । इनमे दो को छोड़कर सभी चार-चार पद्यों के है ।

5

महत्त्व और मूल्यांकन

जैसा कि हम देख चुके है, ईसरदास की रचनाएँ दो प्रकार की हैं—(क) वीररसात्मक और (ख) भक्तिपरक। पहले वीररसात्मक रचनाओं को ले।

वीररसात्मक रचनाएँ :

1

मध्ययुग में राजस्थानी में रचित चारण शैली की अधिकांश रचनाओं का आलम्बन युद्धवीर है, कुछ में कर्त्तव्य-बोध, प्रेरणा और उद्‌बोधन आदि के भाव मुखरित हैं। यह युद्धवीर महान् कर्मवीर है जो अपने कार्य-सम्पादन में कृतसंकल्प है।

इस युद्ध के कतिपय परम्परागत आदर्श हैं—भागते हुए पर, शस्त्रहीन पर, सोए हुए पर, बिना सचेत किए असावधान आदि पर शस्त्र-प्रहार न करना।

इस कर्मवीर के कुछ गुण हैं—वह ऐसा है जो कभी थकता नहीं, हताश होता नहीं, रुकता और बैठता नहीं। परिस्थिति और अवस्था से वह हार नहीं मानता और मृत्यु का तो मानों वह उपहास करता है। वह शिवम् का उपासक है।

इस कर्म के प्रेरणा-स्रोत हैं—कतिपय तत्कालीन स्वीकृत उदात्त जीवन-मूल्य, सांस्कृतिक परम्पराएँ और लोकादर्श। वे मूल्य हैं—आन-मान और गौरव-भावना; शौर्य-पराक्रम; बलिदान, त्याग और उत्सर्ग; धरती-प्रेम; कर्त्तव्य-पालन; स्वामिभक्ति, दीन, दुखी, आश्रित और शरणागत-रक्षा, दर्पपूर्ण चुनौतियों का सामना और वचन- निर्वाह।

सांस्कृतिक परम्पराएँ गौरव-भावना भरतीं, कर्त्तव्य-चेतना और बोध करातीं और बलिदान का सन्देश देती थीं।

लोकादर्श—धरती से जोड़े रखते और लोक-कल्याण की प्रेरणा देते थे। यह संकल्प अडिग और अटूट था।

और इनके मूल में है—उत्साह भाव। उत्साह भाव की धुरी पर ही इन मूल्यों, परम्पराओं और आदर्शों का चक्र घूमता है।

इस प्रकार, राजस्थानी वीरकाव्य का कवि मूलतः गुणों का, उदात्त जीवन-मूल्यों और लोकादर्शों का आकांक्षी, उद्बोधक, गायक और प्रेरक था। और आज के सन्दर्भ में इस काव्य की—तत्रापि ईसरदास के काव्य की यही सार्थकता और महत्त्व है। ईसरदास के काव्य-आलम्बन—वीर और घटनाएँ अतीत के गर्भ में समा गए हैं। वे वीर हमारे लिए वरेण्य हैं क्योंकि किसी न किसी जीवन-मूल्य और कर्त्तव्य-पालन के लिए उन्होंने स्वयं की बलि दी थी। ईसरदास की ऐसी कविताएँ इसलिए वरेण्य हैं कि उनमें वीरता के शाश्वत गुणों का—उत्साह-भाव का तथा कर्त्तव्य-बोध का ओजस्वी अंकन है।

फिर, मध्यकाल में उनके युद्धोत्साही, वीर रसात्मक काव्य की जितनी आवश्यकता थी, उतनी आज भी है। विगत वर्षों में चीन और पाकिस्तान से हुई हमारी लड़ाइयों के सन्दर्भ में इस बात की सार्थकता स्वयंसिद्ध है। बदला क्या है ? वातावरण, साधन, पद्धति और उपकरण। किन्तु उत्साह-भाव, मानवीय गुण और उदात्त जीवन-मूल्य नहीं बदले। हमारे राष्ट्र के सन्दर्भ में तो अपनी स्वस्थ सांस्कृतिक परम्पराएँ और लोकादर्श की मूल मान्यताएँ भी नहीं बदली। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार काव्य की भाषा-शैली, वर्णन-पद्धति, कथानक और काव्य-रूढ़ियाँ अवश्य बदली हैं किन्तु उसका मूल सन्देश आज भी वही है। वह सन्देश—जिसमें जीवन की ज्योति है। सो, ईसरदास के काव्य की आज भी सार्थकता और उपादेयता है।

2

मध्ययुग का चारण कवि केवल कवि नहीं था, वह अवसरानुसार अपना कर्त्तव्य समझ कर युद्ध में लड़ता और स्वयं का बलिदान भी देता था। इसके लिए वह सहर्ष सतत उद्यत रहता था। यह अतिपरिचित तथ्य है। ईसरदास ने चारण गांगो के युद्ध में लड़कर मरने का उल्लेख किया है :

गढवी गांगो गाविजै स्याम न मेल्है साथ।
ओढ्ण अनिकारां नरां हालां रा पण हाथ।
हाथ आवाहतौ सिंधु रागां थियां।
सहै झूझा थयां वळि जसा रा साथियां।

साथि जसवंतरै सांव बहु समवड़ौ ।
गाविजै नेतड़ै रोहड़ै गांगड़ौ ।।37

[स्वामी का संग नहीं छोड़नेवाले, वीर पुरुषों के ढाल स्वरूप और हालों की प्रतिज्ञा धारण करनेवाले चारण गांगो की प्रशंसा करनी चाहिए। सिन्धु राग होने पर वह हाथ उठाता और युद्ध में लड़ता हुआ जसाजी के साथ अनेक सामन्तों के समान युद्ध मे बलि हो गया। निश्चय ही रोहड़ियो गांगो प्रशंसा करने योग्य है]।

ईसरदास का यह कथन आज के साहित्यकारों को भी मात्र कथनी न कर अवसरानुसार कर्मक्षेत्र में कूदने और सक्रिय होने का सन्देश देता है। कथनी और करनी में समानता रखने वाले कितने साहित्यकार हैं ऐसे ?

3

ईसरदास ने वीर की परिभाषा दी है : सच्चा वीर वह है जो अवसर आने पर मरता है; वह सत्पुरुष है क्योंकि सत्कार्यो के लिए अपना बलिदान देता है, इसलिए वह थोड़ा ही जीवित रहता है। यह अच्छा ही है। और मृत्यु क्या है ? वह वीरों का हक है। हक के लिए लोग आज भी लड़ते हैं, किन्तु युद्ध और सत्कार्यों के लिए मृत्यु को हक मानकर लड़ना ईसरदास की ही सीख है :

मरदां मरणौ हक्क है, ऊबरसी गल्लाह ।
सापुरसां रा जीवणा, थोड़ा ही भल्लांह ।
भलां थोड़ जीवियां नाम राखै भवां ।
खेल ऊभा रवै भागला सिर खवां ।
कळ चड़ै जोय चंद जसनामौ करै ।
मरद सांचा जिकै आय अवसर मरै।।50

[वीर पुरुषों का मरना उचित है, यह उनका हक है, इससे वीरगाथाएँ बनी रहेंगी। सत्पुरुषों का थोड़ा ही जीवित रहना अच्छा है; उनका संसार में नाम रहता है। (ऐसे) सत्पुरुष ही खेल में—अर्थात् आसानी से कायरों के सिरों-कंधों पर तलवार उठाते हैं। वे युद्ध में चढ़कर अक्षय कीर्ति के भागी होते हैं। (यावत् चन्द्र दिवाकर) अपना नाम अमर करते हैं। सच्चे वीर पुरुष वे हैं, जो अवसर आने पर मरते हैं]।

चारण काव्य में योद्धाओं के गुण-कार्यो का उल्लेख सिंह, वराह, बैल, गरुड़, मत्स्य और नाग के माध्यम से भी किया गया है। इनमें सिंह शौर्य और पराक्रम का, वराह दृढ़ता का, बैल भारवहनता का, गरुड़ त्वरित वेग का, मत्स्य बलवत्ता का तथा नाग क्रोध का प्रतीक माना गया है। वीर की उपमा हनुमानजी से भी की गई है। 'हालाँ झालाँ रा कुण्डळिया' में वीर की सिंह (8)

गरुड़ (18), शूकर (30), बैल (32) और हनुमानजी (21) से उपमाएँ देकर वीरता के उच्चादर्शों और उल्लिखित गुणों को उजागर किया गया है।

कार्य-सम्पादन अकेला वीर ही नहीं करता। उसके अनेक सामान्य सिपाही और साथी भी उसका साथ देते हैं। स्वामिभक्ति का परिचय देते हुए वे भी मरते हैं, रणांगण से भागते नहीं। ईसरदास इस वीर के साथ उसके साथियों को नहीं भूलते। वे उनको टूटे हुए मुक्ताहार के मोती बताते हैं, जो युद्ध में अपने वीर स्वामी के आसपास ही लड़ते हुए पड़े। स्वामिभक्ति अर्थात् कर्त्तव्य-पालन का यह उदाहरण वीर का गुण है :

हूं बळिहारी साथियां भाजै नहं गइयाह।
छीणा मोती हार जिमि पासै ही पड़ियाह।
पड़ै रिण पाखतीं छीणवै हार परि।
आवरत फेरि संघारि भुझारि अरि।
हाथळै भेरवी कड़तलां हाथियां।
सहै झुझा थया बळि जसा रा साथियां ॥46

[कवि कहता है—मैं जसाजी के साथियों पर न्योछावर हूँ, जो रणांगण से भागे नहीं और टूटे हुए मोतीहार के मोतियों के समान उनके पास ही पड़े। युद्ध में (अपने स्वामी के पास आते हुए) शत्रु-योद्धाओं को विमुख करते हुए तथा उनका संहार कर वे टूटे हुए हार के मोतियों के समान रणभूमि में ही उनके आस-पास पड़े। उन्होंने अपने खड्ग-प्रहारों से झालों के हाथियों को नीचे गिराया और सब जूझ गए। मैं जसाजी के साथियों पर बलिहारी हूँ]।

4

अपभ्रंश के फुटकर छन्दों में वीररसात्मक उक्तियाँ मिलती हैं। प्रबन्ध-चिन्तामणि, कुमारपाल-प्रतिबोध, हेमचन्द्र के अपभ्रंश व्याकरण, प्राकृत पैंगलम् आदि में ऐसे छन्द देखे जा सकते है। विक्रम की पंद्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रचित रणमल्ल छन्द, वीरमायण, अचलदास खीची री वचनिका आदि में वीर के गुण-कर्मों और उत्साहभाव का प्रभावशाली अंकन किया गया है। वचनिका के ये छन्द देखें :

एकइ वन्नि वसंतड़ा, एवड़ अन्तर काइ।
सीह कवड्डी नह लहइ, गइवर लक्ख विकाइ ॥7
गइवर-गळइ गळत्थियउ, जहं खंचइ तहं जाइ।
सीह गळत्थण जइ सहइ, तउ दह लक्खि विकाइ ॥8

[एक ही वन में रहनेवाले सिंह और हाथी में इतना अन्तर क्यों है कि हाथी तो लाख रुपयों में बिकता है (हाथी का मूल्य तो लाखों रुपए मिलता है) और सिंह की कौड़ी भी नहीं मिलती (सिंह कौड़ी भी नहीं पाता अर्थात् कौड़ी देकर भी कोई सिंह को नहीं ख़रीदता)।

हाथी के गले में गलबन्धन होता है। उसे जहाँ खींचते हैं, वहीं जाता है (वह पराधीन होता है, दूसरे के चलाए चलता है)। यदि सिंह इस प्रकार का गलबन्धन स्वीकार करे, तो दस लाख में बिके (सिंह स्वाधीन होता है, वह पराधीन नहीं हो सकता। यदि वह पराधीनता स्वीकार करे, तो एक लाख तो क्या दस लाख में बिके]।

यही परम्परा गाडण पसायत, खिड़िया चानण, हरसूर, आसोजी आदि से होती हुई ईसरदास तक पहुँची है। 'हालाँ झालाँ रा कुण्डळिया' में उन्होंने इसको एक नया आयाम दिया।

5

भाव-व्यंजना और वर्णन-शैली में इस 'कुण्डळिया' ने अनेक परवर्ती कवियो को प्रभावित किया है। इस दृष्टि से विख्यात बाँकीदास और सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे कवियों की रचनाओं पर भी इसका प्रभाव लक्षित होता है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

1. सादूळौ आपा समौ, बियौ न कोय गिणंत।
   हाक विडाणी किम सहै, घण गाजियै मरंत ।।9 —ईसरदास
   (शार्दूल अपने सामने किसी दूसरे को कुछ नहीं गिनता। वह दूसरे की हुंकार तो सहे ही क्या, घन-गर्जन से ही खीजता है (मरता है)।
   अंबर री अग्राज सूं, केहर खीज करंत।
   हाक धरा ऊपर हुई, केम सहै वळवंत ।।—बाँकीदास
2. केहरि मरूं कळाइयां, रुहिर ज रत्तड़ियांह।
   हेकणि हाथळ गै हणै, दंत दुहत्था ज्यांह ।।11—ईसरदास
   (हे सिंह, मैं रुधिर से भरी तेरी लाल रंग की कलाइयों पर न्योछावर हूँ। तू अपने पंजे के एक ही प्रहार से हाथी का हनन करता है, जिसके दो हाथ लम्बे दाँत होते हैं)।
   केहरि कुंभ विदारियौ, तोड़ दुहत्था दंत।
   रुहिर कळाई रत्तड़ी, मदतर तैं महकंत।—बाँकीदास
3. माल्हंतौ घरि आंगणै, सखी सहेलौ ग्रामि।
   जो जाणूं पिय माल्हणौ, जे मल्है संग्रामि ।।7।।—ईसरदास

(हे सखी ! अपने घर के आँगन और गाँव में आनन्द की मौज में धीरे-धीरे मस्त चाल से चलना सहज है। मैं तो अपने पति को आनन्द से घूमनेवाला तब जानूं, जब वह संग्राम में भी इसी प्रकार घूमे)।
घर आंगण मांहें घणा, त्रासै पड़ियां ताव।
जुध आंगण सोहै जिकै, बालम ! वास बसाव ॥—बाँकीदास

अब ईसरदास और सूर्यमल्ल की कुछ रचनाएँ देखें :

1. ग्रीझणि दीयै दुड़बड़ी, समळी चंपै सीस।
पंख झपेटां पिउ सुवै, हूँ बळिहारि थईस ॥28—ईसरदास
(जसाजी की स्त्री कहती है—गिद्धिनी थपकी दे रही है और चील सिर-चंपी कर रही है। पंखों की झपेटों मे पति सोए हुए हैं, मैं उन पर बलिहारी हूँ)।
कंकाणी चंपै चरण, गीधाणी सिर गाह।
मो विण सूतौ सेज री, रीत न छंडै नाह ॥—सूर्यमल्ल

2. सेल घमोड़ा किम सह्या, किम सहिया गज दंत।
कठिण पयोहर लागतां, कसमसतौ तू कंत ॥19—ईसरदास
(हे कंत ! तुमने भालों के प्रहारों को कैसे सहा ? कैसे हाथियों के दाँतों को सहन किया ? तुम तो कठोर स्तनों के स्पर्श से ही कसमसा जाते थे)।
करड़ा कुच नूं भाखतौ, पड़वा हुंदी चोळ।
अब फूलां जिम आंगमै सेलां री घमरोळ ॥—सूर्यमल्ल

3. बैनाणी ढीलो घड़े, मो कंथ तणो सनाह।
विकसै पोइण फूल जिम, पर दळ दीठां नाह ॥33—ईसरदास
(हे बहन ! (लोहारिन) मेरे पति के कवच को ढीला घड़ना। वह शत्रु सेना को देखकर इस तरह खिलता है, जिस तरह कमल का फूल (सूर्य को देखकर खिलता है)।
आळस जाणै ऐस मे, बप ढीलै विकसंत।
सींधू सुणियां सौ गुणौ, कवच न मावै कंत।—सूर्यमल्ल

4. घोड़ां हीस न भल्लिया, पिय नीदड़ी निवारि।
बैरी आया पावणां, दळ-थंभ तूझ दुवारि ॥3—ईसरदास
(जसाजी की स्त्री कहती है—हे पति ! द्वार पर घोड़ों की जो हिनहिनाहट हो रही है, वह शुभ नहीं है, तुम नींद को छोड़ो। विकट बैरी पाहुने बनकर तुम्हारे द्वार पर आए हैं)।
धण आखै जागौ धणी, हूंकळ कळळ हजार।
विण नूंता रा पाहुणा, मिळण बुलावै बार ॥—सूर्यमल्ल

5. सखी अमीणा कंत रौ, अंग ढीलौ आचंत ।
कड़ी ठहक्कै बगतरां, नड़ी नड़ी नाचंत ॥13—ईसरदास

हे सखि ! तुम मेरे पति का शरीर ढीला बताती हो । (पर जब उत्साह में, उसकी रग-रग नाचती है, तो जिरह-बख्तर की कड़ी-कड़ी टूटने लग जाती है) ।

सुण हेली ढीलै सहज, लेणौ पड़वै लोच ।
कंत सजंतां सौ गुणौ, कड़ी बजंतां कोच ॥—सूर्यमल्ल

इस तरह के और भी अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं ।

'झालाँ झालाँ रा कुंडळिया' की कोटि की रचनाएँ राजस्थानी में बहुत ही कम मिलेंगी । इस तरह के 'झड़उलट' कुंडळिया छन्दों में कल्लाजी रायमलौत पर लिखी आसियो दूदो की रचना (20-21 छंद) है । इसके कतिपय छन्दों में अणखले किले (सिवाने के किले और पहाड़ का नाम) की ओर से अभिव्यक्ति कराई गई है (वरदा, वर्ष 9, अंक 2, अप्रेल, 1966) ।

भक्तिपरक रचनाएँ :

1

ईसरदास ने अपने गुरु पीताम्बर भट्ट से भागवत के 'महारस', दूसरे शब्दों में 'दिव्यरस' या 'हरिरस', का रहस्य प्राप्त किया था । 'विद्यावतां भागवते परीक्षा'—यह कहावत प्राचीन काल से विद्वत्-समाज में प्रचलित रही है । ईसरदास ने यह रहस्य अपने तक ही सीमित नहीं रखा । उन्होंने जनसाधारण के लिए इसको सुलभ बनाया । अपने अध्ययन-मनन और स्वानुभूति के साथ इसके सार को सरल राजस्थानी में प्रकट किया । इस प्रकार, लोक की धार्मिक, आध्यात्मिक चेतना को गति और पुष्टता प्रदान की । हरिरस इसका श्रेष्ठ उदाहरण है ।

2

ईसरदास ने समन्वय का महान् प्रयास किया । उन्होंने धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक धरातल पर यह कार्य किया । इसका आलम्बन थी भक्ति और उनकी सामाजिक चेतना । मीराँ की भाँति ईसरदास भी किसी सम्प्रदाय-विशेष में दीक्षित नहीं थे । न ही वे किसी वैचारिक मतवाद के अन्धानुयायी थे । इस कारण वे निर्भीकता से अपनी बातें कह सके थे । भागवत का आधार

लेने पर भी वे उसमें और शास्त्र-ग्रन्थों में वर्णित परमेश्वर के लीला-कार्यों पर तिलमिला देनेवाली टिप्पणियाँ कर सके थे। निन्दा स्तुति में ऐसे लीला-कार्यों को उजागर करते हुए वे अत्यन्त प्रखरता और निर्भीकता से जगन्नियंता को, जगत् की सामाजिक मर्यादाओं, लोकादर्शों, और मानवीय गुणों की अदालत के कठघरे में खड़ा करते है। दूसरे शब्दों मे, वे नैतिकता, एवं उदात्त, स्वस्थ; सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों के आग्रही है। भले ही निन्दा स्तुति के अन्त मे आत्मनिवेदन के रूप में वे क्षमा-याचना कर लें—क्योंकि वे कमजोर है; किन्तु ऐसे मूल्यों की अवमानना न वे सह सकते है और न कर सकते है। मूल्य-रक्षा उनके चिन्तन की धुरी है। जिन कार्यों से किसी भी प्रकार से सामाजिक-संस्थिति पर आँच आती है, वे उन पर चोट करने से नही चूकते। भगवद्लीलाओं का गान तो अनेक भक्तों ने नाना प्रकार से किया है, किन्तु सामाजिक सन्दर्भो मे उनके अनौचित्य को दो-टूक शब्दों में कहनेवाले विरल हैं। ईसरदास से पूर्व निन्दा स्तुति की कोटि की कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती। पदम भगत (विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) के रुक्मणी मंगळ (हरजी रो व्यांवलो) में कृष्ण-रुक्मिणी विवाह के जीमनवार प्रसंग में, स्त्रियों के मुख से गाली गीत के रूप में अवश्य ऐसे कथन आए है, किन्तु उनका संदर्भ और क्षेत्र सीमित है। (देखें—जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य, दूसरा भाग, पृष्ठ 520-21)। नरसी मेहता के कुछ पदों में भी कहीं-कहीं यह ध्वनि सुनाई देती है, पर उनका प्रयोजन भिन्न है। इस प्रकार, 'निन्दा स्तुति' अपने ढंग की अनुपम कृति है। अपरोक्ष रूप से इसका एक और प्रभाव ध्वनित है। वह है—छोटे-से-छोटे आदमी का बड़े-से-बड़े आदमी के गलत, च्युत कार्यों और भूलों को निर्भीकता-पूर्वक कह सकने का साहस।

3

ईसरदास ने देखा था कि मुसलमान आरम्भ में चाहे बाहर से आए थे किन्तु यहाँ रहते तब तक उनको शताब्दियाँ बीत चुकी थीं और वे यहीं के हो चुके थे। जो लोग धर्म-परिवर्तन कर मुसलमान बने, वे तो यहीं के थे ही। उनमें और हिन्दुओं में वैमनस्य, अविश्वास और कटुता दोनों को ही कमजोर करने वाली थी। उन्होने इसका निदान प्रेम से किया तथा धार्मिक स्तर से सामाजिक भाईचारे की नींव दृढ़ की। हुसैन को प्यासा ही मरवाने, मुहम्मद साहब को पुत्र न देने, रसूल की कोई औलाद क़ायम न रखने तथा पीर-पैग़म्बरों को कष्ट देने के लिए उन्होंने परमेश्वर पर गहरा आक्रोश प्रकट किया है (निन्दा

स्तुति)। दसवें—कल्कि अवतार के समय, उनकी सेना में अनेक देवी-देवताओं, सिद्धों, हनुमान, विभीषण, सुग्रीव, पाँचों पाण्डव, गोरखनाथ आदि के साथ पीर, पण्डित, पैग़म्बर, शेख तथा हुसैन और उनके अनुयायी, मीर और मीर-जादे भी होंगे। वे भी 'निकलंक' के साथ 'किलंग' से युद्ध करेंगे और उसको मारकर पुनः सत्ययुग-स्थापन में सहायक होंगे (वही, तथा गुण आगम, गुण वैराट आदि)। कवि ने हिन्दुओं की (राम-राम) और मुसलमानों की—'सलांम अलेख' 'अलेख सलाम' अभिवादन प्रणाली; गया-प्रयाग, तीर्थ और मक्का-मदीना, हज; पुराण और क़ुरान की एकता बड़े सशक्त शब्दों में प्रतिपादित की है और वह भी 'गरुड़ पुराण' में। उन्होंने स्पष्ट किया है कि जो परमेश्वर हिन्दू में है, वही मुसलमान में है (गुण आपण)। जो आत्मस्वरूप को जानता है, उसके लिए वेद और कतेब में भिन्नता नहीं है (भगवंत हंस)। 'कुराण' और 'पुराण' को समान आदर देते हुए उन्होंने हरिरस में कहा है कि ये दोनों ही परब्रह्म को पूरी तरह नहीं जानते :

प्रमेसर तेरा पार प्रलोई, कुरांण पुरांण न जाणई कोई ।।45

ईसरदास ने जिस सहज-भाव और स्वाभाविक रूप से हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात कही है, वह विरल है। निन्दा स्तुति में तो हिन्दू-तुर्क (मुसलमान) और 'हिन्दुआणी-तुरकाणी' का एकत्व घोषित करते हुए इन दोनों जातियों की कतिपय प्रचलित भिन्नतापरक क्रियाओं और शब्दावली का रोचक उल्लेख किया है। नमन में पूर्व और पश्चिम दिशा, जपमाला—'तसबी' (अ.-तस्बीह=माला), व्रत-रोज़ा, ईश-आदम, अनंत-आलम, डर-बीह आदि शब्दों की अर्थ-एकता तथा उनके द्वारा द्योतित वस्तु, कार्य आदि की एकता की ओर भी ध्यान आकृष्ट करवाया है।

इतने व्यापक रूप में हिन्दू-मुसलमान की एकता का प्रयास ईसरदास से पहले किसी चारण शैली के कवि ने नहीं किया था। इसके लिए वे सन्तकाव्य के ऋणी है, जिसकी सुदृढ़ परम्परा राजस्थान में जाम्भोजी से आरम्भ होकर जसनाथजी, दादूदयालजी आदि से होती हुई उन तक पहुँची थी। ईसरदास को श्रेय इस बात का है कि उन्होने पौराणिक धरातल पर खड़े होकर यह बात कही तथा विशिष्ट शैली और सन्दर्भों में कही। आज के वातावरण में इस स्वर को और अधिक गुंजायमान करने की आवश्यकता है।

4

ईसरदास की अधिकांश रचनाओं के मंगलाचरणों में या तो कथ्यावलम्बन की स्तुति है अथवा देवी की। **रासलीला**[1], **गुणवराट**[2], **दिन्दास्तुति**[3] और **हरिरस**[4] जैसी बड़ी और प्रमुख रचनाओं में देवी की स्तुति है। कवि का कथन है कि बिना देवी की कृपा के हरि को कोई नहीं जान सकता :

अहि नर मानव रिष अमर, तो सेवैं सह कोइ।
प्रविता तो किरपा पयै, क्रसन न जांणै कोइ ॥3 (—**गुणवैराट**)

इसके अतिरिक्त यत्र-तत्र देवी का महिमागान मिलता है। **'देवियाण'** तो लिखी ही देवी पर गई है। इसका प्रयोजन है—देवी-उपासकों—शाक्तों की उपास्य—देवी और वैष्णवों के उपास्य—हरि, दोनों के मूलभूत एकत्व को स्वीकार कर उसको उजागर करना। एक ओर वे हरिरस लिखते हैं, जो भगवद्-स्वरूप भागवत का साररूप है और दूसरी ओर देवियाण, जिसकी देवी निखिल चराचर सृष्टि-स्वामिनी, सर्जक, पालक, संहारक और सर्वशक्तिसम्पन्न है।

5

नाथ-योग और वैष्णव भक्ति—दोनों साधनाओं में अन्तर है। साधना-भेद होते हुए भी लक्ष्य-प्राप्ति एक है—आत्मदर्शन, परमतत्त्व-प्राप्ति। भक्तों ने अपनी-अपनी रुचि और संस्कारानुसार अपने आराध्य—परब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूपों में से किसी एक को न्यूनाधिक महत्त्व दिया। राजस्थानी और हिन्दी साहित्य के आधार पर यह विदित होता है कि ईसरदास के समय तक नाथ-योग और साधना तथा निर्गुण और सगुण को लेकर काफ़ी चर्चा और आलोचना-प्रत्यालोचना हो चुकी थी। नाथों की कृच्छ्र साधना तथा गृहस्थ के और नारी के प्रति उनके अत्यन्त कठोर स्वर के कारण, निर्गुण और सगुण अनुयायियों ने उन पर कड़े प्रहार किए थे। तुलसी ने तो साफ़ ही कहा था कि गोरख ने जोग जगाकर लोगों को भक्ति से दूर भगा दिया—(गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग)। जाम्भोजी ने गोरखनाथ को तो परम महत्त्व दिया किन्तु तत्कालीन नाथों की लोक-विमुखता, परमुखापेक्षिता, खण्डित, भ्रान्त-

---

1. नमो नमो जग नीमवग, सारदा सरसत्ति।
   चामंडा सहि(त) चीतवौ, सिध बुधि समपि समत्ति ॥1
2. कुण्डळणी माया कळा, धरणि बखाणण ध्रम।
   देवी मुज्झ सुमति दे, परि जिणि कथू परम्म ॥1
3. सम्बन्धित छन्द इसके विवेचन मे देखें।
4. रिधि सिधि देअण कोइला राणी, बीना बीज मंत्र बम्भाणी।
   वयण मुझ दे अविरल वाणी, पुणुं कित्त जिम सारगपांणी ॥1

दृष्टि और पाखण्डों की कड़ी भर्त्सना की। उन्होंने परमतत्त्व को निर्गुण निराकार मानते हुए उसके विभिन्न अवतारों में आस्था व्यक्त की, किन्तु मूर्तिपूजा को अमान्य ठहराया। उनकी परम्परा 'सगुणोन्मुखी निर्गुण' परम्परा कही जा सकती है, जिसमें जसनाथजी और अनेक सन्तों ने महान् योग दिया। इस प्रकार निर्गुण-सगुण के समन्वय की यह विरासत ईसरदास को मिली थी। ईसरदास के एक परवर्ती सन्त—दरियावजी (संवत् 1783-1815; रामसनेही सम्प्रदाय की रैण (राजस्थान) शाखा के प्रवर्तक) की एक साखी से ध्वनित होता है कि निर्गुण और सगुण के उपासकों की भी पारस्परिक निन्दा-स्तुति हो जाया करती थी :

किसको निंदू किसको बंदूं दोनूं पल्ला भारी।
निरगुण तो है पिता हमारा, सरगुण है महतारी ।।25

(—श्रीरामसनेही अनुभव आलोक, पृष्ठ 79)

इस सम्बन्ध में सूरदास की भाँति ईसरदास ने भी एक बात कही है कि मैं निर्गुण को अगम समझकर सगुण का वर्णन करता हूँ। निर्गुण से तो सगुण होता है किन्तु सगुण निर्गुण नहीं होता। ध्यातव्य है कि ऐसा कहने पर भी वे निर्गुण का वर्णन करते हैं। उनके गेय पद तो है ही निर्गुण भक्ति के। शेष रचनाओं में भी अनेक प्रकार से निर्गुण ब्रह्म का महिमागान है। तात्पर्य यह है कि ईसरदास ने इन दोनों रूपों का प्रभूतशः गुणगान कर भेद-दृष्टि का अन्त कर दिया। उनकी रचनाओं को पढ़ते समय यह ध्यान ही नहीं रहता कि परब्रह्म कब निर्गुण और कब सगुण और कब इन दोनों से परे है। परब्रह्म के गुणगान में रमा देने की अद्‌भुत क्षमता उनमें है।

जहाँ तक नाथों की तत्कालीन साधना और क्रियाओं का प्रश्न है, ईसरदास ने उनके विषय में कुछ नहीं कहा। उन्होने भी नाथपंथ के संगठनकर्ता गोरखनाथ को परमज्ञानी मानते हुए उनको उच्च और आदरास्पद स्थान दिया है। यही नहीं, हरिरस में नाथपंथी अभिवादन पद्धति– 'आदेश-आदेश' का अनेक बार प्रयोग किया है। प्रकारान्तर से उन्होने उनकी साधना-पद्धति के भी संकेत दिए हैं और पात्र-भेद से योग-साधना को भी मान्यता दी है।[1]

1. हरिरस से कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

नमो गुर दत्त ज आदि गोरष, नमो अवधूत उदास अलख। (131)
अजपा सिव तणउ तू ईस, अजपा तोरउ सिव अधीस। (157)
गाजइ ग्रिह भीतरि बइठउ गूझ, पूजारा पंच चड़ावई पूज। (158)
बइराग न राग न बपु न वेस, आदेस आदेस आदेस आदेस। (52)
निकाल निराल निताल नरेस, आदेस आदेस आदेस आदेस। (50)
विसंन विसव तुहारउ वेस, आदेस आदेस आदेस आदेस। (142)
सुरति तू ही ज तू ही ज सबद, मरदां माला विचि मरद। (146)

निन्दास्तुति में तो परमेश्वर पर गोरखनाथ के प्रति पक्षपात करने का आरोप लगाया है। कहा है कि विना पढ़े-लिखे गोरखनाथ को ज्ञान दे दिया। कल्कि अवतार के प्रसंग में गोरखनाथ का उल्लेख हुआ है। पीछे उद्धृत एक डिंगल गीत में उनकी महत्ता दर्शाई गई है। ईसरदास ने तत्कालीन प्रचलित किसी धर्म-मत की कटु आलोचना नहीं की किन्तु एक स्थान पर जैन धर्म के विभिन्न गच्छों—लोंका, तपा, खरतर का उल्लेख करते हुए उनकी शिथिलताओं और भुलावों की ओर संकेत अवश्य किया है (निन्दास्तुति)। हरिदास निरंजनी ने भी जैन धर्म की कटु आलोचना की है। विदित होता है कि विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में जैन धर्म की विभिन्न शाखाओं में वैचारिक भ्रान्तियाँ और शिथिलाचार व्याप्त हो गया था।

6

चरम पुरुषार्थ के रूप में ईसरदास मोक्ष की भी कामना करते हैं और प्रेम-भक्ति की भी। मोक्ष के बदले प्रेमभक्ति की कामना मध्ययुग के भक्त कवियों का अपना मूल्य है। ईसरदास इस मूल्य को महत्ता देते हैं। हरिरस में वे कहते हैं—हे अनेकनामी, त्रिभुवनस्वामी! मुझे तुमसे बिछुड़े हुए अनेक दिन बीत गए हैं, तुम्हारा साथ छूट गया है। हे जगभावन! अब मुझ भटकते हुए को रख और हे त्रिभुवन पावन! मुझे प्रेम-भक्ति दे :

घण दीहां विछुटू घण नांमी, साथ तुम्हीणउं त्रिभुवन सांमी।
भमतउ राखि हवई जग-भावन, प्रेम भगति दई त्रिभुवन पावन ॥24

यह उनका अपना स्वर है। किन्तु मोक्ष की कामना भी उस युग की स्वीकृति थी। सो, उन्होंने भागवत के आधार पर इसका उपाय बताया—हरिगुणगान। उनका ध्रुव विश्वास है कि भावनानुसार हरिगुणगान से प्रेम-भक्ति और मोक्ष—दोनों ही सधते हैं। अतः उनका सारा प्रयास हरिगुणगान पर है। नाम-स्मरण से नामी मिलता है, इससे सद्वृत्तियाँ जाग्रत होतीं और पापकर्म नष्ट होते हैं। कर्मनाश से व्यक्ति स्वस्वरूप में स्थित होता है। मोक्ष भगवद्-कृपा का फल है। यह कृपा पाना ही आत्मनिवेदन का हेतु है। उनकी समस्त रचनाओं में नाना प्रकार से हरिगुणगान किया गया है। इसके मूल में प्राणि-मात्र के प्रति प्रेम का सन्देश है (भगवंत हंस तथा अन्य रचनाएँ)।

7

हरिरस के प्रसंग में देख चुके हैं कि ईसरदास ने कई महत्त्वपूर्ण तात्त्विक प्रश्न उठाए हैं, विशेषतः कर्म और जीव के सम्बन्ध में। 'निन्दा स्तुति' में जहाँ

उनकी नैतिक और सामाजिक मान-मूल्यों की दृष्टि है, वहाँ 'हरिरस' में दार्शनिक चिन्तन की। सम्भवत: भागवत और अन्य शास्त्रों में सन्तोषजनक समाधान न पाकर ही उन्होंने ऐसे प्रश्न दोहराए थे : 'एकोऽहम् बहुस्याम्' के पश्चात् पहले कर्म हुआ कि जीव? 'बहुस्याम्' की आवश्यकता क्यों पड़ी? जीव कर्म में स्वतंत्र है या नहीं ? है तो और नहीं है तो, क्यों और कैसे ? विश्व-प्रपंच का मूल कारण क्या है, और क्यों है आदि उनके प्रश्न आज भी उत्तर की अपेक्षा रखते हैं। 'भगवंत हंस' मे 'तत्त्वमसि' वाक्य की व्याख्या है। 'गुण आपण' में सर्वेश्वरवाद की धारणा स्पष्ट है। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (मूल सत्ता एक है। उसी को विप्र (विद्वान) अनेक प्रकार से (अनेक रूपों में) कहते हैं) का स्वर तो सभी रचनाओं में गुंजित है। हरिरस, गुणवैराट आदि में एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद के विभिन्न रूपों के संकेत मिलते हैं। ईसरदास भारतीय अध्यात्म-चिन्तन से भली भाँति अवगत थे। इस चिन्तन को दार्शनिक शब्दावली में परिभाषित न कर उन्होंने विभिन्न प्रकार से हरिगुणगान के माध्यम से सरस रूप में प्रकट किया।

8

गुण और गहराई की दृष्टि से हरिरस, 'हालाँ झालाँ रा कुण्डळिया' और निन्दास्तुति ईसरदास की अत्यन्त उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। प्रसिद्धि की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान हरिरस को और उसके पश्चात् 'कुण्डळिया' को है। तत्त्वचिन्तन तथा ऋग्वेद के 'एकंसद्विप्रा बहुधा वदन्ति' के धरातल पर अत्यन्त लाघव से प्राय: प्रत्येक पद्य में, परब्रह्म के नाना नामरूपों, लीला-कार्यों और गुणों के उल्लेख-संकेतों के साथ आत्मनिवेदन 'हरिरस' की विशेषता है। कहना न होगा कि भगवद्-कथा विशेष के आधार पर रची गई रचनाएँ (राठौड़ पृथ्वीराज कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री', दधवाड़िया माधोदास कृत 'राम रासौ' आदि) तथा दशावतार-वर्णन के रूप में लिखी गई रचनाएँ इससे भिन्न प्रकार की हैं।

अभी तक हरिरस से पूर्व लिखी गई इस प्रकार की एक सशक्त भक्ति-रचना का पता चला है—जयसिंह कृत हरिरासु या हरिरासौ। एक गुटकाकार पाण्डुलिपि में संवत् 1621 से 1636 के बीच लिखी हुई रचनाओं में यह कृति लिपिबद्ध है। इससे तथा भाषा के आधार पर भी इसका रचनाकाल विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में कभी होने का अनुमान है (शोध-पत्रिका, वर्ष 15 अंक 4, अक्टूबर, 1964, पृष्ठ 277-279 में श्री अगरचन्द नाहटा का 'कवि जयसिंह रचित हरि रासु' नामक निबन्ध)। सिटी पैलेस, पोथीखाना (खास मोहर संग्रह), जयपुर में संवत् 1734 में लिपिबद्ध इसकी एक और प्रति (संख्या—

1938) मिलती है। यह प्रवाहपूर्ण और बहुत प्रभावशाली भक्ति-रचना है। ईसरदास के हरिरस में यह परम्परा न केवल पूर्णता तक पहुँची बल्कि इसनें उल्लिखित कारणों से एक नई परम्परा का सूत्रपात्र भी किया। अनेक कवियों ने इससे प्रभावित होकर अपनी-अपनी रचनाएँ लिखीं, जिनमें सुरजनदास पूनिया कृत कथा हरिगुण (लगभग संवत् 1700; द्रष्टव्य—जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य, भाग 2), जैन मुनि मान कृत ज्ञानरस (संवत् 1739) आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। लालस पीरदान की तो सभी कृतियाँ न केवल हरिरस से अपितु ईसरदास की अन्य कृतियों से भी प्रभावित हैं।

9

ईसरदास उत्साह-भाव और उदात्त जीवन-मूल्यों के आशावादी कवि हैं। उनके भले-बुरे के मानदण्ड हैं—सामाजिक मर्यादा, लोकादर्श और नैतिकता। वे कार्य का शुभाशुभ उसके उद्देश्य, साधन, सामाजिक परिणाम और प्रभाव से आँकते हैं। निर्भीकता, स्पष्टता और संवेदनशीलता उनकी वाणी के गुण हैं। उनकी भक्ति-साधना का लक्ष्य मत, जाति, धर्म और भेदभाव से रहित मनुष्य है। वे समन्वय के प्रस्तोता, पूर्ण के उपासक, प्रेम के संदेशवाहक और शिवम् के गायक हैं। उनकी यह साधना-यात्रा लम्बी है। उसका प्रसार मोरमुकुट-धारी भगवान कृष्ण की 'आरती' से लेकर रहस्यानुभूति और तत्त्वप्राप्ति तक है, जिसके संकेत कई स्थलों पर मिलते हैं।[1]

—o—

1. हुआ हवि ठाकुर सेवक हेक, ओळख्या अंतर एक अनेक।
थया हवि हेक जुदा किम थाइ, मिले करि पांणी पाणी मांहि ।।155 —हरिरस

परिशिष्ट-1

(क) ऐतिहासिक, वीररसात्मक—डिंगल गीत और दोहे :
(आरम्भिक पंक्ति के बाद कुल पद्य-सख्या दी है)

हळवद के झाला रायसिंह मानसिंहोत पर

1. तुरक मुगल ताणीजतै सहु कोई समरियो ।[1] 3
2. खेधै लग खत्री खड्‌ग हथ खारा ।[2] 5

रावळ जाम लाखावत पर

3. नक्र तीह निवाण निबळ दाय नावै ।[3] 5
(अन्यत्र इसको आसोजी की रचना बताया गया है)
4. कहिस्यां तौ तूझ भलौ, करणाकर ।[4] 4
5. जुग भल स्रीराम सुणायै जाये ।[5] 5
6. अरि ठरीया उदर मौरि ठरीया ।[6]

लाखा जाम पर

7. जलि सूर नवै जिम्म पौह विनवै प्रम ।[7] 5

सरवहिया बीजा दूदावत पर

8. रंग-रातौ चीत कवट हर राजा ।[8] 3
9. ब्रं जाणै विजौ विढण विधि जाणै ।[9] 4

---

1. राजस्थानी वीर-गीत, भाग 1, पृष्ठ 59; प्रति सख्या 176, पृष्ठ 87, यह प्रति इन पक्तियों के लेखक के संग्रह की है।
2. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग 6, पृष्ठ 125; झालां झालां रा कुण्डळिया, भूमिका, पृष्ठ 12
3. राजस्थानी वीर-गीत, भाग 1, पृष्ठ 53
4., 5. वही, पृष्ठ 54, 55 तथा प्रति संख्या 176, पृष्ठ 118, 158
6. प्रति संख्या 176, पृष्ठ 120
7. वही, पृष्ठ 137
8. राजस्थानी वीर-गीत, भाग 1, पृष्ठ 49
9. वही, पृष्ठ 50 तथा प्रति संख्या 176, पृष्ठ 148

जाडेचा जसा हरधमलौत पर

10. तिल तिल तन हुवै तणी जद तूटै ।[10] 5

11. पप भपै किमूं की अगनि प्रहासै ।[11] 6

आबू बाढेल पर

12. बौसाइ अनेरडै विहल वरतिस्यै ।[12] 4

13. सुपि दीठौ तूझ तणै माणिम तण ।[13] 4

भीम बाढेल पर

14. महानव दीप चौरासी मंदिर ।[14] 3

हूंदोरत पर

15. अनि वुढा हुए मुआ जुत्रि आगै ।[15] 4

इनके अतिरिक्त रावळ सावंतसिहौत, रड़मल वणहल, साहिब जाड़ेचा, पखावद की लड़ाई विषयक गीत,[16] और झाला रायसिह और राठौड़ प्रताप पर फुटकर दोहे[17] मिलते हैं। ऐसी फुटकर रचनाओं की संख्या और भी हो सकती है।

(ख) **भक्तिपरक फुटकर रचनाएँ :**

(सन्दर्भ के लिए पृष्ठ 104, फुटनोट देखें)

1. **डिंगल गीत आदि :**

1. विध्यायै नै सकति न ध्यायै सकति विना सिवि ध्यायै । 4
2. जप जाप न जाग न ताप न तीरथ कसट कियां फळ हुवै न कांई । 3
3. अला आलेखियो किणी न देखे ओलेपियो ।
4. घोडले चड़ी द···झिखि रि झलंदा । 5
5. तंन नाचि रे मंन नाचि रे नाराइणि आगळ नाचि रे । 7
6. सांमी श्रीरगौ माहवौ मांनसरोअर भाउ तणौ जळ भरियौ । 4
7. म(ा) धा मात तूं तात तूं प्रांण दीवांण मूं । 5
8. नाराइणि कमल लोचन सामि सुंदर प्रीतबर धारी । 5

---

10. राजस्थानी वीर-गीत, भाग 1, पृष्ठ 58
11. प्रति सख्या 176, पृष्ठ 156 ; मुहता नैणसी री ख्यात, भाग 2, पृष्ठ 249—इसमें आरम्भिक 3 दोहले दिए गए हैं।
12. प्रतिसंख्या 176, पृष्ठ 159, 160
13., 14., 15. प्रति संख्या 176, पृष्ठ 159, 160, 156
16. प्रतिसंख्या 137, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर ।
17. प्रतिसंख्या 176, पृष्ठ 29

9. अवरंण वरंण धरणधर अंबर असरंण सरंण हरे । 8 (अष्टपदी, आरती)
10. आतिमा रे हरिउ अचरिउ अचरि मांनिपो जनम प्रांमिओ मरि मरि । 4
11. जै जयो जलिनिधि ची जमाई श्रीआ वाल्हा सेष साई । 5
12. हरि गुण गाई रे हरि गुण गाई । 5
13. मुनां एक वटाऊड़ौ मिलिओ, आज मथर मां आयो । 4
14. बार किता ग्रभवास वसंतां दसमासां वरा दीन्हो । 3
15. नाव रै घट माहि नरहर इहड़ौ केमि आविड़ियौ । 3
16. (जे नाम) लंक बिभीषण लाधी सकर ताइ विधि साधी । 5
17. बाल लीला तुझ बाला बाल साथ रमै बाला । 6
18. वलि उधरंण गोपाल बाळौ गाय नंद चारण गुआळौ । 5
19. कंन आरती कंन आरती मझ हुवै नगरि द्वारामती । 5
20. मईअल भजि हो त्रेभुयंण मंडण छौळि जळ नवखंड छेलण । 10
21. आलम आवियो युग सिधि आवी घोड़ले पाखर घलावी । 4
22. आतिमा रे इळि एक उधारौ श्रीकम जळनिधि पथर तारौ । 5
23. कांन्ह गांगलारे गंगाजळा भोळा बाळा भीभळा । 6
24. जिनि षिचै ज्यागि रुद्रबांण षंच अजिणि । 7
25. हरि वडौ वेदांनिध्यान बडांवडौ लषां नै उधारौ लाडौ । 5
26. मनां···षहां राषि गावि···दि गोपाल मल
पाइ तोरै परां पाप सां पाषि । 5
27. राम बला किनि बलि बधा प्रांण पुरिषि नांम लधा । 5
28. लसैं काई रे आतिमा एक दिन लांघता उरअंतरि खड़ो ताप आंणी । 5
29. वड़ पाखै वेध न कीजै कीधो जिमि रामण कीजै । 4

इनमें संख्या 1 से 28 तक के गीत कलकत्ता की हस्तलिखित प्रति (संख्या 20) में हैं; छन्द-शास्त्रीय दृष्टि से अधिकांश पाठ संशोधनीय हैं। संख्या 9 राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर की प्रतिसंख्या 273 में भी है और राजस्थान-भारती, बीकानेर, नवम्बर 1956 में प्रकाशित है। संख्या 6, 7, 8 तथा 29, 30 प्राचीन राजस्थानी गीत भाग 12, उदयपुर में प्रकाशित हैं (क्रमश: पृष्ठ संख्या 12, 8, 7 तथा 5, 10)। संख्या 31 रा. प्रा. वि. प्र., जयपुर की प्रतिसंख्या 247, मेरे संग्रह की प्रतिसंख्या 176 (पृष्ठ 147) में है और हरिरस (कलकत्ता), राजस्थानी वीर-गीत, भाग 1, पृष्ठ 51 आदि में प्रकाशित है; इनमें दोहलों की संख्या 6 से 9 है। संख्या 32, 33, 34 और 35 श्री मांनदांन बारहठ, ग्राम नगरी, द्वारा संवत् 1994 में प्रकाशित 'श्री हरिरस' मे हैं। इनमें से कुछ हरिरस के अन्य संस्करणों में भी हैं। संख्या 36, राजस्थानी साहित्य के अप्रकाशित काव्य, जिल्द 4 (कलकत्ता) में है। संख्या 37, राजस्थान भारती, बीकानेर, नवम्बर, 1958 में प्रकाशित है। इनमें किंचित् शब्द-रूप और पाठ में भेद पाया जाता है।

30. जाणि रे हरि अंतरजामी राम भणे रघुनन्दन राजा। 4
31. धानंतर मयण हणू सुक धावौ। 6, 9
32. कांई न होता पवंन पांणी जळां थळां अहंकार। 20
33. दीवाण तूं दहिवाण तूं रांमांण तूं सुरतांण। 4
34. एको मन उचाट राखो नव मानव कदे। 16—'शामला के सोरठे'।
35. हरिगुण गाय हरि गुण गाय
    हरि गुण गाय बहो गुण थाय। 7—छोटा हरिरस
36. मूगटा मनां रांम रोळो मुष दुष दाळद मेटण सब दोप।
37. चालो विसंन रा पगां हूंत व्रह्मंड हूंता चाली। —'गीत गंगाजी रो'।

(ग) **हरजस, सबद आदि*** :

1. विद्या एक पढावो रांम, निसदिन रटूं तुम्हारा नांम। 4
2. वैरागी रांम मनावो रे। 4
3. साधु भाई सुणज्यो ग्यांन विचारा
   साहब सांमळ है कै न्यारा। 5
4. सना भाई सैज समाधु सजावो, जासै आवागवन न आवो। 4
5. मदर मे क्या ढूंढत डोले हिरदै में वसै रमता रांम। 4
6. भजन कर रांम नै भजौ मांरी हेली। 4
7. साधां सोवंन सिषर घर मेरा,
   नहीं सषी मांण अजेरा। 4
8. रांम परम पुरस घट पाविया चित कूं और चलावै। 4
9. सरव सिरोमणि नाम निगम कहै न्याय है। 4
10. दीसत है सो पंथ सिर दीसत है फिर नांहि। 4
11. संतां भाई देष्या देस दीवानां, तंत राग नहीं तानां। 4
12. संतां भाई गुरु चरणां बलिहारी, गम सै लेत उबारी। 4
13. बाहरै मांयलै जाळ परो कर भाई, कण नैपत घर आई। 5
14. संतां संत समागम कीजै, जद मोरा साहब रीझै। 4
15. अवधू नकुला रांम हमारा है। 4

---

*इनमे प्रथम दो श्री राधाकृष्ण नेवटिया, कलकत्ता, की संवत् 1682 की हस्तलिखित प्रति में हैं। शेष 13 (संख्या 3 से 15) राजस्थानी साहित्य के अप्रकाशित काव्य, जिल्द 4 (कलकत्ता) में मिलते हैं। इनके स्रोत का पता नहीं होने से, इनकी प्रामाणिकता और शुद्ध पाठ के बारे में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। इस विषय में और अनुसन्धान की आवश्यकता है। यही बात श्री बदरीप्रसाद साकरिया द्वारा प्रकाशित 'प्रभुजी आ वेळा झट आवो' (मरु-भारती, पिलानी, अक्टूबर, 1972, पृष्ठ 23) वाली प्रार्थना तथा अन्य ऐसे प्रकाशनो के विषय में कही जा सकती है।

परिशिष्ट-2

संदर्भ-सूची

(हस्तलिखित प्रतियों का परिचय तीसरे अध्याय के दूसरे अनुच्छेद के अंतर्गत दिया जा चुका है। यहाँ प्रकाशित ग्रंथों की सूची दी जा रही है।)

1. अचलदास खीची री वचनिका, सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, सन् 1960
2. कुंडळीया जसराज हरधोलाणी रा, सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट, सन् 1974
3. गीत मंजरी, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, संवत् 2001
4. चंद वरदाई और उनका काव्य, विपिनबिहारी त्रिवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् 1952
5. चारणोत्पत्ति-मीमांसा-मार्तण्ड, कविराजा भैरवदान, बीकानेर, संवत् 1962
6. छन्दःप्रभाकर, जगन्नाथप्रसाद 'भानु', जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर, सन् 1926
7. जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य (भाग 1 तथा 2), हीरालाल माहेश्वरी, बी. आर. पब्लिकेशन्स्, 6, प्रिटोरिया स्ट्रीट, कलकत्ता, सन् 1970
8. जोधपुर राज्य का इतिहास, गौ. ही. ओझा, अजमेर, संवत् 1998
9. दयालदास री ख्यात, भाग 2, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, संवत् 2005
10. बीकानेर राज्य का इतिहास, खंड 1, गौ. ही. ओझा, अजमेर, संवत् 1996
11. पीरदान-ग्रन्थावली, सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, सन् 1960
12. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग 6 तथा 12, साहित्य संस्थान, उदयपुर, प्रथम संस्करण

13. भक्तमाल, नाभादास; नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् 1937
14. भक्तमाल, राघौदास ; राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् 1965
15. भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, एस. आर. शर्मा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा सन् 1961
16. महाभारत; गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2030
17. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास, रामकर्ण आसोपा, जोधपुर, प्रथम संस्करण
18. मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, विश्वेश्वरनाथ रेउ, जोधपुर, सन् 1938
19. मुंहता नैणसी री ख्यात, भाग 2, राजस्थान प्रा. वि. प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् 1962
20. मुहणोत नैणसी री ख्यात भाग 2, ना. प्र. स., काशी, संवत् 1982
21. राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, गौ. ही. ओझा, अजमेर, संवत् 1993
22. राजस्थानी भाषा और साहित्य, मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् 2008
23. राजस्थानी भाषा और साहित्य, हीरालाल माहेश्वरी, आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता, सन् 1960
24. राजस्थानी वीर-गीत, भाग 1, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, सन् 1945
25. रामायण, मेहोजी कृत, सम्पादक—हीरालाल माहेश्वरी, सत् साहित्य प्रकाशन, श्री अग्रसेन स्मृति भवन, पी-30 ए, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता 7, सन् 1984
26. रासमाला, फार्बस कृत (द्वितीय भाग), मंगल प्रकाशन, जयपुर, सन् 1964
27. वंशभास्कर, सूर्यमल्ल मिश्रण (तृतीय जिल्द), जोधपुर, संवत् 1956
28. वेलि क्रिसन रुक्मणी री, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् 1931
29. श्री देवियाण, सम्पादक—शंकरदान जेठीभाई देथा, लींबड़ी, सन् 1960
30. श्रीमद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2008
31. श्री रामदासजी महाराज की वाणी, खेड़ापा, संवत् 2018
32. श्रीरामसनेही अनुभव आलोक, रैण, प्रथम संस्करण
33. हरिरस, किशोरसिंह बार्हस्पत्य, कलकत्ता, सन् 1938
34. हरिरस, पींगलशी पाताभाई, भावनगर, संवत् 1980
35. हरिरस, शंकरदान जेठीभाई देथा, लींबड़ी, सन् 1981
36. हरिरस, मांनदांन बारहठ, ग्राम नगरी, संवत् 1994

37. हरिरस, बदरीप्रसाद साकरिया, बीकानेर, सन् 1960
38. हरिरस, हरसुरभाई गढवी, भेसाण (जूनागढ़), सन् 1981
39. हालाँ झालाँ रा कुण्डळिया, हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर, संवत् 2007

पत्रिकाएँ :

1. वरदा, बिसाऊ (राजस्थान)
2. राजस्थान-भारती, बीकानेर
3. मरु-भारती, पिलानी (राजस्थान)
4. शोध-पत्रिका, उदयपुर

——o——

भारतीय साहित्य के निर्माता

भारतीय साहित्य के इतिहास-निर्माण की दीर्घ-यात्रा में जिन महान् प्राचीन अथवा अर्वाचीन प्रतिभाओं ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है, उनका परिचय सामान्य पाठकों तक पहुँचाने के उद्देश्य से इस पुस्तकमाला का प्रकाशन आरम्भ किया गया है। इसके अन्तर्गत अब तक हिन्दी में निम्नांकित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं :

लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ	हेम बरुआ
बंकिमचन्द्र चटर्जी	सुबोधचन्द्र सेनगुप्त
बुद्धदेव बसु	अलोकरंजन दासगुप्त
चण्डीदास	सुकुमार सेन
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	हिरण्मय बनर्जी
जीवनानन्द दास	चिदानन्द दासगुप्त
काज़ी नज़रुल इस्लाम	गोपाल हाल्दार
महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर	नारायण चौधुरी
माणिक बन्द्योपाध्याय	सरोजमोहन मित्र
माईकेल मधुसूदन दत्त	अमलेन्दु बोस
प्रमथ चौधुरी	अरुणकुमार मुखोपाध्याय
राजा राममोहन राय	सौम्येन्द्रनाथ टैगोर
ताराशंकर बन्द्योपाध्याय	महाश्वेता देवी
श्रीअरविन्द	मनोज दास
सरोजिनी नायडू	पद्मिनी सेनगुप्त
तरुदत्त	पद्मिनी सेनगुप्त
गोवर्धनराम	रमणलाल जोशी
मेघाणी	वसन्तराव जटाशंकर त्रिवेदी
नानालाल	उमेद भाई मणियार
नर्मदाशंकर	गुलाबदास ब्रोकर
बाबूराव विष्णु पराड़कर	ठाकुर प्रसाद सिंह
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	मदन गोपाल

बिहारी	बच्चन सिंह
देवकीनन्दन खत्री	मधुरेश
घनानन्द	लल्लन राय
हरिऔध	मुकुन्ददेव शर्मा
जयशंकर प्रसाद	रमेशचन्द्र शाह
जायसी	परमानन्द श्रीवास्तव
कबीर	प्रभाकर माचवे
केशवदास	जगदीश गुप्त
महावीर प्रसाद द्विवेदी	नन्दकिशोर नवल
नन्ददुलारे वाजपेयी	प्रेमशकर
प्रेमचन्द	प्रकाशचन्द्र गुप्त
राहुल सांकृत्यायन	प्रभाकर माचवे
रैदास	धर्मपाल सैनी
श्यामसुन्दरदास	सुधाकर पाण्डेय
सुभद्रा कुमारी चौहान	सुधा चौहान
वृन्दावनलाल वर्मा	राजीव सक्सेना
यशपाल	कमला प्रसाद
बी० एम० श्रीकंठय्य	ए० एन० मूर्तिराव
बसवेश्वर	एच० थिप्पेरुद्रस्वामी
विद्यापति	रमानाथ झा
ए० आर० राजराज वर्मा	के० एम० जॉर्ज
चण्दु मेनन	टी० सी० शंकर मेनन
कुमारन् आशान	के० एम० जॉर्ज
महाकवि उल्लूर	सुकुमार अषिकोड
वल्लत्तोल	बी० हृदयकुमारी
दत्तकवि	अनुराधा पोतदार
ज्ञानदेव	पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे
हरिनारायण आपटे	रामचन्द्र भिकाजी जोशी
केशवसुत	प्रभाकर माचवे
नामदेव	माधव गोपाल देशमुख
नरसिंह चिंतामण केलकर	रामचन्द्र माधव गोले
श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर	मनोहर लक्ष्मण वराडपांडे
तुकाराम	भालचन्द्र नेमाड़े
फ़कीरमोहन सेनापति	मायाधर मानसिंह
राधानाथ राय	गोपीनाथ महन्ती

सरलादास	कृष्णचन्द्र पाणिग्राही
भाई वीर सिंह	हरबंस सिंह
बारहठ ईसरदास	हीरालाल माहेश्वरी
जाम्भोजी	हीरालाल माहेश्वरी
दुरसा आढ़ा	रावत सारस्वत
प्रिथीराज राठौड़	रावत सारस्वत
मुंहता नैणसी	ब्रजमोहन जावलिया
सूर्यमल्ल मिश्रण	विष्णुदत्त शर्मा
बाणभट्ट	के० कृष्णमूर्ति
भवभूति	गो० के० भट
जयदेव	सुनीति कुमार चटर्जी
कल्हण	सोमनाथ धर
क्षेमेन्द्र	ब्रजमोहन चतुर्वेदी
माघ कवि	चण्डिकाप्रसाद शुक्ल
सचल सरमस्त	कल्याण बू० आडवाणी
शाह लतीफ़	कल्याण बू० आडवाणी
भारती	प्रेमा नन्दकुमार
इलगो अडिगल	मु० वरदराजन
कम्बन	एस० महाराजन
माणिक्कवाचकर	जी० वंमीकनाथन
नम्मालवर	ए० श्रीनिवास राघवन
पोतन्ना	दिवाकर्ल वेंकटावधानी
वेदम वेंकटराय शास्त्री	वेदम वेंकटराय शास्त्री (कनिष्ठ)
गुरजाड	नार्ल वेंकटेश्वर राव
वीरेशलिंगम्	नार्ल वेंकटेश्वर राव
वेमना	नार्ल वेंकटेश्वर राव
ग़ालिब	मुहम्मद मुजीब